जीव

कर्म

ईश्वर

लेखक व प्रकाशक

विनयचन्द जैन

४६७ कटरा रेवड़ी

सब्जी मण्डी देहली—७

व्ययकर्ता : श्रीमति प्रेमलता जैन धर्म पत्नी श्री रतनलाल जैन

मूल्य . २ रु० ५० पैसे

मुद्रक
सम्राट प्रेस
७११७/१८ पहाड़ी धीरज,
देहली-११०००६

(वीर निर्वाण सम्वत् २५०७ विक्रमी सम्वत् २०३८ (सन् १९८१))

विषय सूची

मोक्ष का मंत्र

नवकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं,

णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायणं,

णमोलोएसव्वसाहूणं ।

समर्पण

स्वर्गीय श्रीमती सलोचना देवी

(वर्तमान "मृदुकांक्षी" नाम्नी देवी)

नोट : स्वर्गीय श्रीमती सलोचना देवी ने अपने जीवन काल में मेरी हर प्रकार सहायता व रक्षा की। और यह नश्वर शरीर त्याग कर मुझे इस भव समुद्र से निकालने हेतु हेतु पूर्ण प्रयत्न शील हैं हर समय संसार से मोह त्याग का उपदेश देती रहती है।

इस नश्वर शरीर को त्यागने के बाद एक समय (जैन समय का यूनिट) में इस पृथ्वी से २५,००,००० लक्ष योजन. असंख्यात पृथ्वीयों में से एक पर पुष्प शय्या पर जन्म लेकर कौतूहल वश कि अब वह संसारी प्राणी क्या करते हैं इस लोक में जब डाक्टर शव परीक्षा कर रहा था. उसी कमरे में अपने पारदर्शी शरीर से पुनः आ कर ठहर गई, और अपनी अन्तेष्टी क्रिया तक इस पृथ्वी पर रही।

विनयचन्द

परिचय

कालका (शिमला लाईन पर) के धनाढ्य कुलीन जैन परिवार में श्रीमती सलोचना देवी का जन्म विक्रमी सम्वत् १९६९ में हुआ प्रथम संतान होने के कारण परिवार में कन्या उत्पन्न होने पर भी पुत्र के समान उत्सव मनाए गए। समय के अनुसार जैन धर्म ग्रंथों का अध्ययन तथा प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। १६ वर्ष की आयु में करनाल के समृद्ध जैन परिवार में श्री विनयचन्द जैन के साथ उनका पाणिग्रहण हुआ।

संतान के रूप में केवल एक मात्र कन्या रत्न प्रेमलता की ही प्राप्ति हुई। आप अपने समस्त जीवन में उदर रोग से ग्रस्त रहीं। परन्तु दुःख में लिप्त न रह कर आप स्वयं भी आनन्द मय रहती थी और आप के समीप जो भी प्राणी आता था वह भी आनन्द प्राप्त करता था। सरल हृदय तथा उदारता का ही आप के मुख्य गुण थे पर दुःख से कातर, तथा पर सुख में आनन्दित होना आपका निज स्वभाव था। आपके समीप बच्चे से लेकर वृद्ध तक सभी अपना कष्ट लेकर आते थे और पूर्ण संतुष्ट होकर जाते थे अतः सुख वितरण करती यह रमणी २१ दिसम्बर १९७७ को पूर्णमासी के दिन "नवकार मंत्र" का स्मरण करती हुई कुछ ही घंटों में चिर निद्रा में लीन हो गई।

आपके जीवन को देखते हुए यह पंक्तियां की जीवन में कुछ ऐसा करे "कि अन्त में जाते समय वह हंसे और जग रोए" साधारणतः ठीक उतरती है।

प्रेमलता जैन

पुत्री श्री सलोचना देवी

महामंत्र नवकार

इसके ध्यान में ऐसे परमाणु जो जीव को इस पृथ्वी पर कार्माण शरीर से बन्ध युक्त रखते हैं स्वयम् ही नष्ट (निर्जरा) युक्त होते है। परन्तु नवकार मंत्र की क्रिया क्या है।

नवकार मंत्र इस प्रकार की ध्वनि पैदा करता है जैसे एक भंवरा किसी पुष्प पर गुंजार करता है। वह ध्वनि स्वयम् काय अथवा शरीर के अन्दर फैलती है और अगर वह ध्वनि जीव की शक्ति से युक्त हो तो वह कार्माण शरीर के परमाणुओं को शीघ्र पद भ्रष्ट करती है। और निर्जरा का कारण होती है। अगर वह जीव की शक्ति युक्त न हो तो वह संसार से एक प्रकार के मोह को नष्ट करने वाली एक ध्वनि उत्पन्न करती है और किसी अंश में वह कार्माण शरीर को भी भेदती है परन्तु वह कर्म परमाणु जो कष्टकारी है उनको पूर्णतय नष्ट नही करती।

इसको विचार कर अपने जाप ध्यान का मार्ग बनाओ ध्यान पूर्वक हृदय में नवकार मंत्र का उच्चारण मनुष्य को शीघ्र ही उच्चतर स्थान पर पहुंचा देता है कारण नवकार मंत्र की शक्ति अपार है।

शीघ्र ही अपने वेदनीय कर्म समूह को नष्ट कर जीव का ज्ञान प्राप्त करता है और ज्ञानावर्णी कर्म समूह को नष्ट करता है और समयक्त की प्राप्ती की ओर अग्रसर होता है।

विधि नवकार मंत्र को पहिले ५ दिन नवकार मंत्र ध्वनि सहित उच्चारण करो पुन: आहिस्ता आहिस्ता ध्वनि को मन्द करते हुए हृदय तथा नाभि में ले आवो। पुन: नाभि से वह मस्तिक की ओर स्वयम् ही अग्रसर होने लगेगी यह अवस्था होने पर समझो कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो गये हो।

नोट: निर्जरा ! कार्माण शरीर मे कर्म परमाणुओं (Atoms) का अलग होना
निर्जरा है।

जब नवकार मंत्र का जाप शुरू हो तो मन वचन काय का योग हो जब चित्त में विचार नवकार के पाठ का हो तो मन में ध्यान करो "ओं नमो सिद्धाणं. नमो उवज्झायाणं लोए सव्वेसाहुणं" यह विचार कर नासिका का श्वांस देखें कौन सा चलता है अगर बायीं नासिका मे श्वांस अन्दर जाता हो और मस्तक में चला जाता हो तो इस प्रकार आसन बनावें नाभि हृदय मस्तक एक रेखा में हों तो श्वासं की गति ठीक रहेगी। ध्यान नासिका के अग्र भाग पर हो नवकार मंत्र का जाप करें शब्द रहित जाप अति उत्तम है हृदय में नवकार मंत्र का उच्चारण हो।

नासिका मे श्वांस मस्तिक में गमन करे पुन, उसी नासिका द्वारा बाहार निकले। अगर श्वांस बायीं नासिका से चलकर दायीं से बाहर आवे तो हाथ नाभि के ऊपर रहे: दोनों टांगों पर शरीर का पूरा बोझ रहे तो नासिका का श्वांस ठीक होगा और वायु मस्तिक में से होकर आयेगी। नवकार मंत्र का जाप हृदय में करे।

३. अगर श्वांस दायीं ओर से चलता हो तो पर्यंक आसन सर्व उत्तम अथवा कोई आसन जो शरीर के सुख के निमित्त हो ले सके। बांह छाती को स्पर्श करते हुए नाभि कमल से ३--४ अगुल प्रमाण पर रहे ताकि मंत्र का जाप हो सके।

अगर यह अवस्था होगी तो शीघ्र ही मंत्र के प्रभाव से हृदय के कमल में वायु का गमन होगा और मस्तक के चिन्ह और हृदय का विकास होकर वाणी में ज्ञान का प्रकाश होगा।

४. अगर श्वास का ध्यान न हो सके तो साधारण आदमी, जो ध्यान करना चाहे किसी प्रकार आसन बनाना चाहिए और लघु-दीर्घ शंका से निवरत होकर वायु का अधिक प्रकोप न हो और स्थान एकान्त हो, ऐसे स्थान पर अगर ध्यान करें तो उत्तम है वस्त्र अपनी अवस्था के अनुसार परन्तु स्वच्छ हो दुर्गंध

न हो, मन वचन काय के योग से ध्यान करने की इच्छा मन में हो ध्यान करे। "ओं नमो सर्व कल्याण कारी पंच परमेष्टीभ्यो: नमो नमः" जाप से पूर्व आसन पर पद्मासन, सुखासन, अथवा दीर्घआसन, से बैठे पूर्व हाथ मे माला लेवे बायें हाथ मे अंगुष्ट और अंगुली से मनके को सचालन शक्ति प्रदान करे श्वांस को समय के अनुसार बायीं नासिका मे ग्रहण करने का उपक्रम करे अगर न हो सके तो अभ्यास करे। अथवा किसी ज्ञानी से पूछे।

ऐसा करने मे २ वर्ष मे उस पुरुष को ज्ञान का देने वाले तप की वृद्धि होगी और समय पर ज्ञान का प्रकाश होगा।

वीर विक्रमादित्य का पूर्व भव

(महावीर स्त्रोत्त के रचयिता)

ओं नमो श्री सिद्धाय
श्री वीतराग जिनेन्द्राय: नमो नम

मैं भी मुनि महार ज के चरण कमलों में प्रणाम करके श्री पार्श्वनाथ चिन्तामणि गौतम गणधर केवली – उप केवली श्री सुधर्मा स्वामी सब को प्रणाम करके तीनों लोकों में मुक्ति का मार्ग प्रकाश करने वाले श्री महावीर स्वामी को नमस्कार करके श्री जिनेन्द्र भगवान के गुणगान करके अपनी आत्मा और पर आत्मा के कल्याण के हेतु एक सुख दायक वृतान्त सुनाता हूं सुनो :—

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण कल्याणक को हुए कुछ वर्ष व्यतीत हुए थे कि राजगृही नगरी में एक विख्यात जिन धर्माचार्य मुनि पधारे। वहां के भव्य जीव उनके उपदेश से लाभ पाकर अपनी आयु के विषय में और अपनी जीवन कथा का वृतान्त पूछने लगे। वहां पर एक मुनि महाराज का चमत्कार देखने के अभिप्राय से एक देव आकर मनुष्य रूप में बैठा था।

जब सब मनुष्य अपने विषय में पूछ रहे थे तो वह यह जानने के लिए कि क्या मुनि महाराज ज्ञान से उपदेश करते है या मोह माया आदि में मनुष्य को धन कमाने के निमित्त यह धर्म कार्य कर रहे है। वह भी आगे आया। मुनि महाराज को नमस्कार कर उनके चरणों में बैठा और प्रश्न किया महाराज। मेरी भार्या से मुझे कब पुत्र प्राप्त होगा और मेरी भार्या अब कहां है। यह बताओ।

मुनि महाराज ने अवधि ज्ञान से देखा कि देव मेरी परीक्षा के निमित्त आया है। उन्होंने यह जान कर कि अब बहुत से जो श्रावक है उनके उपशम का समय उचित है कहा।

कि हे देव सुन :—

तू अपने कुल में अपनी माता से नहीं आया। तू अपनी स्त्री से रमन नही करता तू गर्भाधान नहीं करता। तेरी स्त्री यक्षनी है फिर क्या पूछता है। यह वृतान्त सुन कर सब मनुष्य बहुत विस्मित हुए कि पुरुष रूप है और अपनी माता से जन्म नही पाया क्या कारण है।

प्रश्न होने पर मुनि राज ने कहा कि यह व्यंतर जाति का देव है पिता माता से संतान युक्त नहीं है। यह सुनकर देव बहुत भयभीत हुआ अपने रूप में आकर मुनि महाराज को प्रणाम कर चरणों में लिप्त भया।

जब अवधि ज्ञान से मुनि महाराज ने उसके पूर्व और आने वाले भव का विचार किया उसे समयक्त दृष्टि भव्य जान कर, आयु कर्म अधिक शेष न समझ कर संथारा दिया।

वह देव उसी स्थान में मर कर उस तप के प्रभाव से राजा भया।

वहां उस अन्त घोर तप और निश्चिन्त ध्यान की अवस्था में प्राणान्त होने से अति सुखदायक जीवन युक्त परन्तु अन्त मार्ग को पाने वाला वीर विक्रमादित्य राजा का जन्म धारण किया।

आयु व्यतीत करके मुनि के दर्शन के प्रभाव से जिनेन्द्र मत का धारक हुआ और श्री महावीर स्तोत्र की भाषा में रचना की। उसके प्रभाव से अनन्त काल से भ्रमण कराने वाले भवों को नष्ट करके सम्यक्त धारी जीव भया और समय पाने पर मोक्ष जायेगा।

श्री महावीर स्तोत्र

(रचयिता वीर विक्रमादित्य)

महावीर स्वामी महावीर स्वामी महावीर स्वामी महावीर स्वामी

तुम्हारी शरण में आया हूं स्वामी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी

तुम्हारी शरण में जो प्राणी हैं आए
गए दुःख सभी के तुरन्त ही बिलाए
महावीर स्वामी महावीर स्वामी

अजब हाल है आज मैंने जो देखा
तुम्हारी शरण में जो रहता था निश दिन
गया घिर मुसीबत में वह आज प्राणी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी
बताओ महावीर स्वामी महावीर स्वामी

कृपा करके कारण जो होते हैं इसम
त्रिलोकी है जग में तुम्हें सब जो कहते
परन्तु न तुम दुख किसी का भी हरते
बतादो महावीर स्वामी बतादो महावीर स्वामी

मैं समझा तुम्हें मौन पाया हमेशा
कि कारण कि तुम हो न दुःख सुख के दाता
यह प्राणी है भूला स्वयम् अपने छल में
कभी—जीव चलता कभी जन्म पाता है दुःख में
तो क्या यह भी होती थी इच्छा तुम्हारी

नहीं समझा यह भूल थी एक मेरी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी

तुम्ही तो थे सर्वज्ञ जानन् हार सारे
तो क्यों कर सभी को दुखी देख पाते
तुम्ही ने सभों को किया तत्व जारी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

जभी जुल्म भारत में जारी हुआ था
तुम्ही ने धर्म का था उपदेश कीना
यहां से अहिंसा का था चक्र चलता
परन्तु अहिंसा न थी उग्र जारी
हुआ तुमको चक्रेश्वरी का विजयेता
तभी तुम ने धारी थी योगिक तपस्या
तभी तुम ने धारा अति कष्ट भारी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

मैं समझा जो देखा तुम्हारा था जीवन
नहीं कोई हरता है अब दुःख हमारा
हमारे कर्म ही हमें दुख के दाता
प्रभु दीन रक्षा महावीर स्वामी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

मुझे तुम तो इतना बताओ ?
क्या कारण हुआ है मुझे कष्ट भारी-महावीरस्वामी

मै देखा तुम्हें आज अपनी समझ मे
न तुम ने मुझे कष्ट दीना कभी भी
यह दुख सुख हो होते है जीवों को प्राणी
अभी आप कहते है मुझ को अज्ञानी
यह माना कि मेरे कर्म थे हो भारी
न चलते थे ऊपर को चलते थे भारी

तो क्यों कर मुझे प्राप्त होता कभी भी
सुखी था मैं कब जो होता अभारी
मैं मूर्ख था चिन्ता न की थी कभी भी
कि मेरे कर्म ही मुझे है सताते
मैं समझा हूं अब तो महावीर स्वामी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

मैं निश दिन करूंगा अपूर्व तपस्या
मैं देखूंगा होनी है फिर क्या प्रतिभा
जो होते है कर्मों के फंदे जो भारी
वह होते है इतने ही सब दुख के गाथी
कि जब तक यह जीवन है ममता मे रहता
तो क्यों न इसे दुःख ही दुख है मिलता
मैं समझा तुम्हीं ने जो मार्ग था खोला
वह प्राणी था उस पर जो होकर के चलता
वह सजता था स्वामी महावीर स्वामी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

मैं आया हूं अपने कर्मों को पाकर
तो क्यों न उठाऊं उन्हें फल पाकर
मुझे तो बताओ महावीर स्वामी-महावीर स्वामी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी

मैं आया हूं प्रभु जी शरण में तुम्हारी
मेरी रक्षा कर दो प्रभु जो हमारी
यह रास्ता तो फिर भी न भूलूं कभी ही
मुझे मार्ग पर लाओ ! स्वामी महावीर स्वामी

यही वीनती आज है मेरी स्वामी
मुझे दरश दो तुम महावीर स्वामी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

मैं जाऊं अभी द्वार तेरे !

तो कर्मों से आकर रहित हूं
न द्रव्यानुयोगों की इच्छा हो मुझ को
मुझे अपनी शक्ति दो महावीर स्वामी-महावीर
मैं चलता हूं आगे बताओ तो स्वामी ?
कि क्या जानता था जमाना तुम्हें भी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी

मैं याचक हूं इच्छुक हूं तत्वों का स्वामी
मुझे दो तुम्ही ज्ञान चक्षु हे स्वामी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी

मै माना था भूला था रस्ता
तो क्या हो गया जो न पाया था रस्ता
मैं आया हूं तेरी शरण में जो स्वामी
करो कल्याण मेरा महावीर स्वामी
मुझे दो तुम्हीं ज्ञान शक्ति हे स्वामी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

न चाहू कर्मी धन न चाहू कमी मैं
मैं चाहू तुम्हें और जिन धर्म वाणी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

मै आया हूं शरणे मैं अब तो तुम्हारी
उतारो मुझे भी तुम्हीं अब तो स्वामी
मेरा रोग अब तो मिटा दो प्रभु जी
मुझे भी करो अपने गुण का प्रभु जी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

मैं जाऊं तो केवल ही होकर विजय से
मैं जाऊं तो पाऊं तुम्हारी शरण में
मैं जाऊं तो पाऊं तुम्हें ही वहां भी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

मैं रोता था जब भी तुम्हें था न पाता

कहूं क्या बताओ महावीर स्वामी
यह आशा प्रभु जी सुनो आज मेरी
मैं चिन्तु प्रभु जी शरण हो तुम्हारी
में जाऊं तो केवल हों दर्शन तुम्हारे
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

न भूलू कभी भी तुम्हें आज से मैं
न भूले कभी कर्म की कष्ट रेखा
मिटाऊं उन्हें मैं तो आओ प्रभु जी
करो मेरी रक्षा-महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

मैं आया था चरणों में जब भी तुम्हारे
तो भूला था तुमको न जाना था तुमको
मैं भूला था अब भी तुम्हें आज तक था
मैं जाना तुम्हीं शरण दाता थे प्राणी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी

यह विनती विनय की
करो मेरी रक्षा यही विनती मेरी
न भूलो कभी तुम मुझे दुख में भारी
मैं आया हूं शरण में अब तो तुम्हारी
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

मैं था भूला—मूर्ख था—न था केवल ज्ञान
जाना था सब कुछ नहीं बना महा अज्ञान
आया दृष्टि में जभी तुम्हारा केवल ज्ञान
जाना मैंने आज ही अपने कर्म का ज्ञान
ऐसी करनी मैं करूं होएं कर्म विनाश
दीपक सम ज्योती जगे होवे जीव प्रकाश
ऐसी शक्ति दीजए करु कर्म का नाश
यह ही वर मोहि दीजये प्रभु महावीर भगवान ॥
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥
महावीर स्वामी महावीर स्वामी ॥

व्याख्या

आत्मा : शुद्ध जीव के साथ कार्माण शरीर का योग, इस अवस्था को आत्मा कहते हैं जीव अनन्त ज्ञान युक्त है परन्तु आत्मा अल्प ज्ञानी है।

मन : जीव की शक्ति द्वारा कार्माण शरीर का प्रकम्पन ही मन है। किसी भी कारण या विधि से जीव की शक्ति जो हर समय सब तरफ चलती रहती है का कार्माण शरीर से विच्छेद कर सकें तो मन समाप्त प्रायः हो जायेगा।

दुःख . निज गुण स्वभाव का अभाव ही दुःख है। निज गुण स्वभाव क्या है? जीव का लक्षण अनन्त सुख अनन्त ज्ञान इसका अभाव ही 'दुःख है। कार्माण शरीर की क्रिया ही, जैसे switch दबाने से बल्ब जलता है, उसी प्रकार कार्माण शरीर में कर्म प्रमाणुओं का संचालन अथवा संघर्ष होने पर जो अवस्था होती है उसे दुःख की संज्ञा दी है।

धर्म : वह मार्ग जो जीव को इस कार्माण शरीर से मुक्त कराकर उर्ध्वगमन कराकर संसार के आवागमन से मुक्त करावे।

शुद्ध नय . उच्च कोटि के मुनि या साधु या श्रावक जो पंचपरमेष्ठी (नवकार मंत्र) के चक्री या अर्द्ध चक्री हो वही शुद्ध नय की अवस्था को प्राप्त हो सकते है। कारण इस अवस्था में ही शुद्ध जीव (जीव तत्व) दृष्टि में आता है और शुद्ध जीव का स्वरूप ही दृष्टि गोचर होता है और यही अवस्था धर्म ध्यान तथा समयक्त प्राप्ती की है।

तीर्थंकरों की दिव्य ध्वनि : वायु शरीर में एक प्रकार का चक्र बना कर चलती है और उससे एक प्रकार की गुंजार चारों दिशाओं में फैलती है और उपस्थित

प्रानियों, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि के कार्माण शरीर से टकराती हुई उसे भेदन करती हुई जीव से सम्पर्क करती है और इस अवस्था में उन की जो शंका होती है सबका ज्ञान तथा शंका निवारण होती है ।

मेरु तथा सुमेरु मंत्र

मेरु तथा सुमेरु मंत्र निकट भव्य ही श्री वीर निर्वाण सम्वत ५००० वर्ष तक कर सकेंगे उसके बाद असम्भव के समान होगा विशेष जानकारी के लिए "मन्त्रोदय" का अवलोकन करें । सुमेरु मंत्र के आराधक का जीवन साधु के समान और संसार से गृहस्थ में रहते हुए भी साधु के समान होता है और संसार का मोह तृष्णा अधिकांश सब शान्त होते हैं । शरीर त्याग ने के समय जैसे छींक आती है ऐसा अनुभव होता है सुमेरु मंत्र का विधि पूर्वक ध्यान करने से अधिक से अधिक ५ या ७ भव और धारण करता है पुनः मोक्ष का निवास प्राप्त होता है ।

मेरु मंत्र क्या है

मेरु मंत्र एक इस प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करता है कि जिससे ज्ञान को रोकने वाले कर्म प्रमाणु शान्त होकर ज्ञान का जाग्रित करते है और जीव की शक्ति को प्रगट रूप में प्रकाश युक्त करते है ।

मेरु मंत्र यह मंत्र ध्वनि की गुंजार से चलता है जैसे जीव का शक्ति सब तरफ हर समय चलती रहती है उसी प्रकार इसके ध्याता का ज्ञान हर प्रकार से उदयमान होकर प्रकाश युक्त रहता है परन्तु ध्याता का ज्ञान क्या है इसका ज्ञान किस प्रकार का हो यह उस भव्य प्राणी को स्वयम् अनुभव करना होगा ।

जीव कर्म और ईश्वर

१. जीव और आत्मा मे क्या अन्तर है ?

२. कर्म पुद्गल परमाणु जड़ है, अजीव है वह अपना फल किस प्रकार देते है ?

३. जीव अमूर्तिक है। कर्म पुद्गल प्रमाणु मूर्तिक है तो वह कैसे जीव को कर्मयुक्त करते है ?

४. क्या जीव दु ख अनुभव करता है और दुःख क्या है ?

५. ईश्वर का निरूपण

६. ध्यान, जाप, विधि

७. वैराग्य क्या है उपार्जन कैसे हो।

जीव

मध्याह्न का समय ... ग्रीष्म ऋतु पूर योग पर है" आकाश मे सूर्य पूरी तेजी मे चमक रहा है और उसकी किरणे पृथ्वी की ओर आकर पूर्ण रूप से सब प्रकार के प्राणियों को व्यथित कर रही है। तिर्यंच भी अपने वास्ते सुरक्षित स्थान खोज रहे है और मनुष्य जो धनाभाव से रहित है अपने सुखमय महलों मे विद्यमान है. परन्तु निर्धन अथवा पथिक कहां जाये ? उनको तो इस तपित-सूर्य्य ज्योति मे ही अपना कार्य पूर्ण करना है।

उसी समय आकाश पर सघन और काले बादल फैल जाते है और सूर्य्य रश्मियों को रोक देते है। पृथ्वी पर विहार करने वाले और आकाश मे उड़ने वाले पक्षी. पशु, मनुष्य आदि शान्ति को प्राप्त होते है परन्तु उस शान्ति का कारण क्या है ? सूर्य्य अपनी किरणों से युक्त आकाश मे विद्यमान है बल सहित है, तेज युक्त और प्रभा युक्त है, परन्तु मेघों द्वारा हो गया है निस्तेज और प्रभाहीन।

क्या मेघों द्वारा सूर्य्य अस्त हो गया या तेजहीन हो गया? नहीं। सूर्य्य अपनी पूर्व की ही दशा को प्राप्त है और मेघों के क्षण में विलीन होने पर सूर्य्य की प्रभा पुनः दृष्टिगोचर होती है।

यही अवस्था जीव की है। जीव स्वभाव से अनन्त-बलयुक्त, ज्ञानयुक्त, तेजयुक्त है, परन्तु कार्माण शरीर से युक्त होने के कारण निस्तेज, बलहीन, ज्ञानरहित, इस प्रकार विशेषण युक्त हुआ है। परन्तु कैसे? किसी समय से, जिसे हम अनादि[1] काल कहते हैं यह जीव-तैजस शरीर और कार्माण शरीर से घिरा हुआ इस संसार में, त्रिलोक में भ्रमण करता है। यह अनादि काल क्या है? आज इस संसार में इसकी आदि अवस्था कोई नहीं जानता इसी

१. वास्तव में अनादि काल यहाँ पर ऐसी अवधि का द्योतक है जिसकी आदि का ज्ञान नहीं है। हमारे अधिकतर जैन ग्रन्थों में अनादि काल का प्रयोग इसी भाव को लेकर किया गया है। वस्तु का निश्चय से स्वरूप न कह कर जैन ग्रन्थों में अनादि शब्द का प्रयोग किया गया है।

अगर केवल ज्ञान की व्याख्या की जावे तो हम कह सकते हैं कि तीनों काल (भूत, भविष्यत्, वर्तमान) को जो पूर्ण रूप से जानता है देख सकता है वही केवल ज्ञानयुक्त होता है। अस्तु अनादि का जहाँ हम भूतकाल सूचक दशा में प्रयोग करते हैं तो केवल ज्ञान की दृष्टि में ऐसा कोई समय नहीं है जिसे हम अनादि कह सकें। केवल ज्ञानी किसी भी भूतकाल के विषय में पूर्ण ज्ञान का धारी है और केवल ज्ञान की दृष्टि में कोई भी अनादि काल नहीं हो सकता है।

ग्रन्थ और समय के अनुसार जहाँ भी जैन धर्म में अनादि शब्द का प्रयोग हुआ है उसका अर्थ भाषा के अनुसार ही किया जा सकता है। मेरे विचार में अधिकतर "अनादि" शब्द इस (विद्यमान अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी काल) को लेकर ही किया गया है अर्थात् ग्रन्थकारों का उद्देश्य यह रहा है कि जीव अनादि से भ्रमण युक्त रहा है अर्थात् इस विद्यमान काल के पूर्व से ही तीनों लोकों में भ्रमण करता आया है। इस प्रकार के विचार से व्यवहार में अनादि-काल का सहज अर्थ में ज्ञान होता है और केवल ज्ञान की महिमा भी विकार-हीन रहती है।

कारण इसे अनादि काल कहा है। इसका ज्ञान केवल वही जीव उस अवस्था में प्राप्त कर सकते है, जब वह अघातिया कर्मों को शेष रखकर, बाकी सब घातिया कर्मों को समूल नष्ट करके कार्माण शरीर को भेदकर केवल ज्ञान की अवस्था को प्राप्त होते हैं।

हमारे सामने जीव, आत्मा और कर्म की समस्या पर विचार करना है। इस समय अन्य मतो को छोड़कर जैन धर्म के अधिकतर दिग्गज विद्वान भी जीव और आत्मा को एक ही समझते है और प्रश्न करने पर कहते है कि यह एक पदार्थ के दो भिन्न-भिन्न नाम है। परन्तु नहीं। मेरा विचार इसके विपरीत है, मैं कहता हूं कि जैसे चीनी और शरबत का अन्तर है और दोनों पदार्थों को कोई शरबत या चीनी नहीं कह सकता, यही अवस्था जीव और आत्मा की है: दोनों रूप भिन्न-भिन्न है। वह कैसे ? जीव और आत्मा दोनों के रूपक भिन्न-भिन्न है।

जिस समय यह आत्मा इस शरीर का त्याग करती है तो एक वस्तु जिसे हम आत्मा कहते है इस स्थूल शरीर को त्याग करती है— केवल जो वस्तु शेष रहती है उसे हम अपनी परिभाषा में मृतक शरीर कहते है, जो चेतनाहीन, ज्ञानरहित है। परन्तु वह वस्तु जो ज्ञान-चेतना-शक्ति का कारण थी इससे पृथक हो चुकी, दूसरे शब्दों में हमको कहना है कि यह शरीर आत्मा रहित है, निर्जीव है अथवा इसको आत्मा ने त्याग दिया है।

पुन: हम जैन शासन में देखते है कि यह आत्मा अपने पूर्व आयु-प्रकृतिबन्ध के अनुसार अन्य स्थान पर शरीर धारण करती है और उस स्थान तक पहुंचने के हेतु जैन आगम के अनुसार इस वह मार्ग एक नियमित रूप में तय करना होता है।

हम देखते हैं कि जब शुद्ध जीव इस शरीर से मुक्त होता है तो वह अपने स्वभाव के अनुसार ऊर्ध्वगमन रूप होता है और वह इस लोक के अग्र भाग मोक्ष में जाकर तिष्ठता है और इस संसार में अन्य देह धारण नहीं करता अथवा जन्म मरण रहित होता है अगर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते है तो हमको मालूम होता है कि :

जीव द्रव्य है उर्ध्वगमन स्वभाव है, अनन्त बल, ज्ञान, तेज युक्त है, और लोक के उर्ध्वभाग मोक्ष पर निष्ठता है।

परन्तु जिस वस्तु का हमें प्रतिदिन, प्रति समय, भास होता रहता है वह इससे भिन्न है, अल्पज्ञान युक्त-अल्प बलयुक्त इत्यादि इत्यादि।

यह तो स्पष्ट है कि दोनों अवस्था शुद्ध जीव, आत्मा भिन्न भिन्न है परन्तु यह अन्तर क्यों ? वह भी चैतन्य, और यह भी चैतन्य वास्तव में हम इसको अपनी संसारी दृष्टि से देख कर दोनों को एक ही मान बैठे हैं, दोनों अवस्था भिन्न भिन्न है।

जीव-शुद्ध अवस्था में अनन्त ज्ञान-बल-तेज युक्त और संसार के उर्ध्व भाग में निवास करता है और द्रव्य होने से अनादि है।

परन्तु वही कार्माण शरीर से लिप्त होने से अल्पज्ञान-अल्पबल-अल्पतेज युक्त संसार में भ्रमणकारी है और इसी अवस्था में इसे आत्मा कहते हैं। और कार्माण शरीर के बन्ध की अपेक्षा से आत्मा आदि है; परन्तु जीव और अजीव द्रव्यों की अपेक्षा से अनादि भी कहा गया है। जीव की कार्माण शरीर युक्त अवस्था को आत्मा कहते है और जीव द्रव्य होने की अपेक्षा से कार्माण शरीर रहित है।

2-कर्म पुद्गल परमाणु जड़ है

जीव महान बलयुक्त है, तेजस शरीर युक्त है, जीव का बल अथवा तेज हर समय सूर्य की किरण के समान चारों दिशाओं में अग्रसर होता है परन्तु सूर्य की किरणों के मार्ग में "मेघ" बाधा युक्त हुए और उसको तेज अथवा शक्तिहीन करने लगे, इसी प्रकार यह कार्माण शरीर जीव की ज्योति में बाधा युक्त होकर उस ज्योति को अन्य रूप में परिणित करती है। जैसे विद्युत का महान शक्ति युक्त "बल्ब" सिनेमा की फिल्म के मार्ग में पड़ने से विद्युत हीन तेज हीन हो कर उन सामान्य प्रमाणुओं को जिनके द्वारा वह निर्मित की गई है आलोकित करता है और उसके प्रभाव से उन परमाणुओं का रूप अन्य प्रदेशों में दृष्टिगोचर होता है। अथवा उस विद्युत की तेजस शक्ति द्वारा उन परमाणुओं के कम्पन युक्त होने से अन्य स्थान पर चित्र-विचित्र प्रकार की अनेक

रचनाएं दृष्टिगोचर होती है जिनको हम अपनी परिभाषा में सिनेमा अथवा फिल्म प्रदर्शन कहते है "कारण है बन्ध" फिल्म आदि', । उसका कारण क्या है ?

परन्तु न अकेला विद्युत का तेज ही वह कला दिखा सकता है न वह फिल्म ही उस तेज विहीन अवस्था में कार्य युक्त हो सकती थी । दर्शक उस फिल्म का ही चमत्कार देखते हैं उस विद्युत तेज को वह गौण समझ कर उसकी अवहेलना करते है, परन्तु मुख्य कारणा वही बल्ब है । इसी प्रकार संसारी प्राणी कर्म को ही मूल कारण समझ कर जीव की सत्ता को गौण समझते हैं । वास्तव में जीव शक्ति के बगैर कर्म परमाणु अजीव, चेतनाहीन, होने से (जीव के सम्बन्ध) किसी दशा में भी परिनमण करने में असमर्थ है ।

३-कर्म बन्ध

इसी प्रकार इस कार्माण शरीर में अनेक प्रकार के, अनेक जातियों के विविध रूप-रस गंध युक्त पुद्गल परमाणु होने से वह अनन्य प्रकार के लेश्या से बल युक्त होने से जीव के तैजस शरीर, दिव्य ज्योति की रश्मियां युक्त बल अथवा तेज युक्त होने से, वह कार्माण शरीर के पुद्गल परमाणु भिन्न-भिन्न रूप-रूपान्तरों में इस संसार अथवा लोक में दृष्टिगोचर होते हैं । और धर्म अधर्म काल के आकर्षण-विकर्षण की शक्ति द्वारा हर समय प्रति पल इन कर्म पुद्गल परमाणुओं के समूहों में समुद्र की तरंगों के समान लहरें चलती-बनती अथवा उठती है । यही दशा और क्रिया कर्म आस्रव की है । हम अपने व्यवहारिक शब्दों में कर्म पुद्गल परमाणुओं के उत्थान में, जो जीव की तैजस शक्ति द्वारा, प्रकम्पन हुआ है, उसको ही हम सामान्य भाषा में मनोभाव अथवा मनोयोग कहते हैं और यही कर्म आस्रव-बंध का कारण अथवा क्रिया है, जो असंख्यात वर्ष अथवा अनादि काल से इसी प्रकार अचल, अथाह प्रवाह रूप में चल रही है और इस संसार अथवा सृष्टि का संचालन करती है । वास्तव में संसार में "कर्म" शब्द का अर्थ ही भ्रमयुक्त है., सामान्य संसारी मनुष्य भारतीय मत मतान्तरों का ज्ञाता होते हुए भी वह शब्द का अर्थ मनुष्य द्वारा किए हुए कार्यों को ही समझता है" परन्तु "कर्म" अजीव पुद्गल

परमाणु है-जिस को दूसरे साधारण संसारी शब्दों में Matter-Atom भी कह सकते है" विज्ञान के अनुसार इस Attom का और सूक्ष्म भाग हो सकता परन्तु जैन दर्शन में इस Attom को और भागों में विभाजन नहीं किया जा सकता है और यह Attom प्रमाणु रूप, रस, गंध युक्त मूर्तिक है। ध्यान के द्वारा देखा जा सकता है। आत्म प्रदेश अथवा मनोभाव" कर्म पुद्गल परमाणु के प्रकम्पन में बाह्य लोक से, अनेक प्रकार के परमाणुओं का आकर्षण-विकर्षण का योग होने से, पुद्गल तथा आत्मा प्रदेशों मे प्रमाणुओं का कार्माण शरीर से बन्ध होता है" इसी अवस्था को जैन आगम आस्रवबंध कहते है" आस्रव है तो बन्ध भी होगा" जिस समय यह वर्गणाओं का प्रकम्पण शान्त हो तो वह अवस्था संवर की है" और अधिक बल युक्त होने मे निर्जरा है" संवर की अवस्था में" मन" में विचारों का अभाव है "और हृदय में एक प्रकार की शान्ति का अनुभव प्रतीत होता है और ऐसा भास होता कि हृदय में जैसे "शून्य" है इसी प्रकार अगर इस अवस्था की वृद्धि हो जावे तो निर्जरा का योग होता है, यह विषय योग का है। यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि योग-ध्यान-समाधि-तप का भेद, ज्ञान ही निर्जरा का मूल मार्ग है इति।

नोट : जैन दर्शन में सूक्षम तर भाग जो विभाजित न हो सके परमाणु है।

4. क्या जीव दुःख अनुभव करता है

जीव अमूर्तिक है परन्तु कार्माण शरीर मूर्तिक है दोनों सयुक्त है अथवा कार्माण शरीर के सम्बन्ध की अपेक्षा से जीव अमूर्तिक होने पर भी कर्म-बन्ध युक्त होता है और अमूर्तिक होने पर भी कर्म पुद्गल परमाणुओं के मूर्तिक होने पर भी व्यवहार नय से, कष्ट युक्त होता है परन्तु वास्तव में सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर जीव अमूर्तिक होता, तेज युक्त होने से कार्माण शरीर को शक्ति युक्त करने में आकर्षण-विकर्षण शक्ति के योग से कर्म पुद्गल परमाणुओं का आस्रव कार्माण शरीर का ही जड़ित करना है. (जीव निर्जर, कर्म पुद्गल परमाणुओं से मिश्रण-हीन है)

अस्तु जीव शुद्ध दशा की अपेक्षा से, कर्म रहित है अथवा कष्ट प्राप्ति की क्रिया का अभाव है। कर्म—परमाणु केवल कार्माण शरीर में युक्त होते हैं

और अपना स्थान प्राप्त करते है। अत: जीव अपनी शुद्ध दशा में होने के कारण दु:ख का कर्म भोगता नहीं है

कर्म तथा समयक्त

कर्म पुद्गल परमाणु अनन्त रूप से इस लोक में फिरते है और अजीव है। परन्तु जैसे लोहचूर्ण चुम्बक की आकर्षण शक्ति से अनेक रूप धारण कर सकता है परन्तु वास्तव मे अपने गुण और रूप को नहीं छोड़ता, वही स्वभाव इन अजीव द्रव्यो अथवा कर्म परमाणुओं का है। अब विचारना है कि कर्म पुद्गल परमाणुओं का रूप, रस, गन्ध और दशा क्या है ? यह वस्तु हमको इस समय ग्रंथो म आगमों मे उपलब्ध नहीं है और न सामान्य मनुष्य की शक्ति का कार्य है। जहां तक मेरा विचार है जैन मार्ग के साधारण विद्वान अथवा साधु या मुनि या उच्च कोटि के तपस्वी भी साधारणतया बताने मे असमर्थ है और जिस समय तक इसको गौण समझ कर त्याग किया हुआ है, संसार के चक्र को, कि यह किस प्रकार चलता है जानना असम्भव है। कर्म पुद्गल परमाणुओं की प्रकृति के ज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात् ही हम इस लोक के विविध रूप के प्राणियों के विषय में विचार कर सकते है कि यह रूप इनको क्यों और कैसे प्राप्त हुआ। जिस समय तक हम कर्म (अजीव द्रव्यों) के सूक्ष्म-सूक्ष्म तर भाग का ज्ञान प्राप्त नहीं होता उस समय तक हम सम्यक्त-दर्शन का अभाव है और संसार का वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता। हमारी दशा संसार भ्रमण-युक्त, जीव के अनन्त सुख का अभाव, अत: दु:ख है। निज गुण स्वभाव का अभाव ही दु:ख है। हमें विचारना है कि शेर-चीता-रीछ आदि क्यों इस प्रकार भयावह है। पुष्प आदि क्यो इतने कोमल और हर्ष देने वाले है-इत्यादि। इस लोक मे कुछ इस प्रकार की वस्तुएं दृष्टिगोचर होती है जो कि भयावह-कष्टदायक हैं। परन्तु क्या संसार के धर्म तत्व को जानने वालों ने विचार करने का कष्ट किया है कि यह अमुक प्राणी इतना भयावह क्यों है या इतना प्रिय-और आकर्षक क्यों है, नहीं, प्रश्न करने पर साधारण सा उत्तर मिल जाता है कि अपने पूर्व जन्म के कर्म के अनुसार रूप-स्वभाव प्राप्त हुआ है। और या ईश्वर ने

इसको एसा बनाया है अधिक कि शेर का स्वभाव ही क्रूर है। परन्तु मैं पूछता हूं क्यों ?

जवाब नही मिलता प्रश्न कठिन भी नही है और साधारण भी नहीं है। अगर विचार किया जावे कि:

कृष्ण-कापोत-नील लेश्या क्या है ? और उनके उदय काल में जो आयु कर्म का बन्ध और संहनन प्राप्त होता है वह किन कर्म पुद्गल परमाणुओं से युक्त होता है ? साधारण ज्ञान युक्त मनुष्य भी इस का उत्तर ज्ञानी से लेकर दे सकता है। परन्तु ज्ञानी पुरुष के लिए इन वस्तुओं का पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त करने के हेतु इन कर्म पुद्गल परमाणुओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना अतः आवश्यक है।"

अधिक नहीं विविध प्रकार के प्रकम्पन से विविध प्रकार के कर्म पुद्गल परमाणु, लोक से खिंच कर कार्माण शरीर के साथ चिपकते हैं, और विविध प्रकार की रचना युक्त अपने स्थान को ग्रहण करते हैं। इन ही विविध रूपों को जैन दर्शन में भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म कहा है जो आकर्षण की शक्ति के अनुसार अपनी अवधि अर्थात् स्थिति का बंध करते हैं और कष्ट या सुख का कारण बनते है। **यही अष्ट कर्मो के नाम से जैन दर्शन में विख्यात है। वह अष्ट कर्म परमाणु न हो कर स्कन्ध है जो अपनी स्थिति बन्ध के अनुसार ही प्रभाव युक्त होते है अस्तु यही दशा इस आत्मा के कष्ट अथवा सुख की प्राप्ति का कारण है और वह मूर्तिक-जड़ कर्म पुद्गल परमाणु जीव को सुख या दुख का अनुभव कराने की शक्ति से विहीन है। परन्तु इस प्रकम्पन शक्ति द्वारा आस्रव युक्त हो कर जीव को कार्माण शरीर द्वारा बन्ध युक्त करने मे समर्थ है। और, क्या उसमे जीव को कष्ट होता है ? यह साधारण मनुष्य बताने मे समर्थ नहीं है, अस्तु केवल आध्यात्मिक ज्ञान युक्त मुनि ही इसको स्पष्ट रूप मे निरूपण कर सकते है। अर्थात शुद्ध जीव दुःख प्राप्त करने मे असमर्थ है। वास्तव में दुःख क्या है ? शरीर की चेतना ही सुख अथवा दुःख का कारण है। इसी कारण जैन दर्शन ने दुःख को जीव के निमित्त अभाव

**मोहनीय, वेदनीय, ज्ञानघाती, दर्शनावर्नीय, आयुकर्म, नाकर्म, गोत्र कर्म अन्तराय

कहा है "जीव को दुःख का अभाव है जीव द्रव्य है-कर्म पुद्गल हैं उनको दुःख सम्भव नहीं" अतः दुःख वास्तव में कोई भी पदार्थ नहीं है-एक ऐसी अवस्था को जिस में जीव के अनन्त सुख के प्रगटपने का अभाव है दुःख है"। इस दुःख का वास्तविक ज्ञान, सम्यक्त ही मूल मार्ग है

ईश्वर का निरूपन

अब हमको विचार करना है कि जैन धर्म, बुद्ध धर्म और वेद-पुराण इत्यादि ईश्वर की क्या सत्ता कहते है। देखने में तो यह प्रश्न अति जटिल दृष्टिगोचर होता है परन्तु साधारण रूप से देखने पर इतना जटिल भी नहीं है। वेद-पुराण आदि ईश्वर को अनन्त बल युक्त सर्व-शक्तिमान-सर्वव्यापी कहते है और जैन धर्म भी वनस्पति- पृथवी-जल-वायु-तिर्यंच और मनुष्य में जीव-आत्मा कहते है। अथवा इनसे यह स्पष्ट है और सर्वव्यापी का प्रश्न आसानी से सिद्ध हो जाता है। वेद और पुराण कहते है कि शुद्ध आत्मा ईश्वर है, "जैन कहते है कि हर एक आत्मा परमात्मा हो सकती है, तो स्पष्ट है कि जीव अपनी शुद्ध दशा में 'ईश्वर है" और वह जैन दर्शन में वेद-पुराण में सर्वव्यापी-सर्वशक्तिमान-अनन्तज्ञान युक्त है। परन्तु यहां थोड़ा अन्तर है वेद पुराण ईश्वर को अनादि काल से सृष्टि का कर्ता मानते है, परन्तु जैन इसको इस रूप में नहीं मानते और कर्मों की प्रधानता मान कर सब कार्य कर्मों द्वारा ही होना मानते है और संसार को अनादि कहते हैं। यह भी सत्य है अगर शुद्ध जीव की दृष्टि से देखा जावे तो शक्ति जीव की ही है जो कर्म पुद्गल परमाणुओं को संचालन शक्ति प्रदान करती है।" परन्तु स्वयं कुछ नहीं करती अस्तु यह स्पष्ट है कि वेद और पुराण भी वही कहना चाहते है जो जैन धर्म कहता है परन्तु दोनों का मार्ग भिन्न-भिन्न है। वह ईश्वर को इस संसार का निर्माता कहते है परन्तु अपेक्षायें भिन्न-भिन्न है। अस्तु यह अधिक युक्ति संगत नहीं है कि इस पर अधिक विचार किया जावे यह स्वयं विचार करने के योग्य है। यहां इतना और कहा जा सकता है कि जीव हर एक पदार्थ अथवा वस्तु में है और क्योंकि जीव की शुद्ध दशा का ही विचार किया जाता है इस कारण इन तीनों मतों के अनुसार शब्द भेद को त्याग कर

हमें यह कहना पड़ेगा कि जीव अथवा ईश्वर सर्व व्यापी या अनन्त शक्ति युक्त ज्ञानयुक्त हैं और सृष्ट संचालन में सहायक है। परन्तु स्वयं निलिप्त है।

कार्माण शरीर अनन्त जीवन पर्यन्त हमारे साथ रहता है अथवा इस जीव को बन्धन युक्त करने का कारण है। इस कारण धर्म और अधर्म द्रव्य का ज्ञान शास्त्रों द्वारा प्राप्त करना आवश्यक है जो कि समय-समय पर इस कार्माण शरीर को जर्जारत करने में सहायक और जीव की ज्योति को प्रकाश युक्त करने का कारण है। और यह ज्ञान भव-भवान्तर तक रक्षक तथा सहायक है, इस कारण शास्त्र ज्ञान भी परम आवश्यक है।

इसके साथ हमारे विचारने योग्य वस्तु केवल जीव और कर्म परमाणु ही है यहां पर अधिक तर मनुष्य यही कहते हैं कि हम को इन झगड़ों से कोई सम्बन्ध नहीं हम दूसरे की बुराई नहीं करते। परन्तु यह मार्ग मुक्ती मगन और ठीक होते हुए भी इतना लम्बा और कठोर पर्वतों-कन्दराओं में हो कर जाता है कि पथिक स्वयं के ही परिश्रम से इस प्रकार मूर्छित अवस्था को प्राप्त होता है कि छोटी से छोटी मृग तृष्णा को देख कर उस में ही अपने आप को डालने का प्रयत्न करते हुए पुनः भ्रमण युक्त हो कर संसार भ्रमण में ही समय व्यतीत करता है।

अगर हम इस कर्म परमाणु की समस्या को किसी प्रकार से भी ज्ञान प्राप्त कर सकें तो हमारे वास्ते "वपु" ज्ञान, कठिन नहीं होगा और जीव की चेतना शक्ति युक्त होने से हम अनेक प्रकार के ज्ञान प्राप्त कर कर सकते हैं जैसे महाभारत के समय के ब्रह्मास्त्र-नागास्त्र-सुदर्शन चक्र इत्यादि। यही नहीं इनके निरोधक अस्त्रों का हम बड़ी सरलता से निर्माण कर सकते हैं और इस समय की परमाणु-युद्ध सामग्री के भय से इस संसार को भय रहित कर सकता है। इस जीव की शक्ति में और "वपु" के संचालन ज्ञान से किसी समय भी तप्तायमान सूर्य के विरोधक मेघों को आकाश में ला कर शीतल पवन का प्रवाह और वर्षा का रूप प्रगट किया जा सकता है। मंत्रों के ज्ञान और सिद्धि कुछ भी नहीं है वरन् जीव की एक विचित्र प्रकार की शक्ति का विकाश और 'वपु" संसार में कम्पन यही मंत्रों का कार्य है और यही मंत्रों की सिद्धि है।

विचारना यह है कि हमें क्या करना चाहिए ? क्या शास्त्र स्वाध्याय में लीन हो कर समय को व्यतीत कर देना चाहिए या अन्य और भी कोई मार्ग और उपाय है । मेरे विचार में अगर हम इन कर्मों से अपने आप को रहित करने की इच्छा है तो हमारे लिए केवल एक ही उपाय है" रूपस्थ ध्यान चाहे गृहस्थी में हो कर चाहे मुनि पद लेकर धारण करें । इस से हम कर्मों का आश्रव-बन्ध-? की अवस्था में निकल कर संवर निर्जरा की अवस्था में होंगे और अगर हम उत्कृष्ट ध्यान में लग हो सके तो इसी अवस्था से शुक्ल ध्यान को प्राप्त हो सकते हैं । अन्तर बहुत ही न्यूनतम है समय पर रूपस्थ, समय पर शुक्ल ध्यान चल सकता है जो कि केवल ज्ञान देने वाला है और संसार के नाश का कारण है ।

कर्म परमाणु का प्रभाव

जब तैजस शरीर के साथ कार्माण शरीर की यह अवस्था होती है जैसे कि हम लिख रहे हैं तो उस समय के उस जीव की क्या अवस्था संभव हो सकती है । इस प्रकार के कार्माण शरीर में से तैजस शरीर का तेज पुंज पूर्ण रूप से गमन करने में असमर्थ होने से वह जीव चाहे पशु हो अथवा मनुष्य-गति में हो अति क्रूर स्वभाव वाला महा मूर्ख दुष्ट प्रकृति वाला और निज स्वरूप को न जानने वाला होने के कारण अति पाप युक्त जीवन व्यतीत करने वाला होता है । यह अवस्था जब कार्माण शरीर अधिक नील कापोत लेश्या युक्त ही होता है ।

अगर हम अपने पंडित जनों से पूछते हैं कि इस अवस्था में इस जीवको कौन से कर्म कष्टकारी हैं और उनकी शान्ति का उपाय क्या हो सकता है ? वह यही उत्तर देते हैं कि इस को मोहनीय-वेदनीय-इत्यादि कर्म के तीव्र उदय

नोट . रूपस्थ ध्यान, शुक्ल ध्यान, धर्म ध्यान में मन-श्वास की क्या दशा व गति होती है विचारने योग्य है

2. भिन्न-भिन्न श्वास की गति से भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्मों की निर्जरा की जा सकती है ।

में आने से यह कष्ट हैं और श्री जिनवर का ध्यान ही शान्ति का उपाय हो सकता है।

यह उत्तर सामान्य संसारी प्राणी के वास्ते और सामान्य पंडित का तो सामान्य रूप में ठीक हो सकता है परन्तु एक जिज्ञासु को यह उत्तर संतुष्ट नहीं कर सकता। वह सोचता है कि इस कार्माण शरीर की अवस्था में कौन-कौन से कर्म परमाणुओं का आस्रव हुआ है? किन से निस्तारा पाने के वास्ते मुझे किस विशेष तप और ध्यान की आवश्यकता है? जो यह परमाणु यहाँ पर इसी अवस्था में इस कार्माण शरीर से पृथक हो जावें और मेरा यह कार्माण शरीर जीव के तेज पुंज के लिए पारदर्शी हो जावे। ताकि मैं इन सांसारिक कष्ट-बन्धन-भव भ्रमण इत्यादि से मुक्त हूँ। यह वह उस समय तक नहीं कर सकता जब तक उसे इस का ज्ञान प्राप्त होने का साधन न हो कि मेरे कार्माण शरीर में किस प्रकार के और कौन-कौन से परमाणु मिश्रित हैं और उनका रूप गन्ध, स्वभाव, प्रकृति और गति-विधि क्या है? जब यह उसे पता लगने का साधन प्राप्त हो जाता है तो कैसे से कैसा मुमुक्षु-प्राणी क्यों न हो अल्प समय में ही उन कर्म परमाणुओं को ध्यान के योग से नष्ट कर सकता है और यह कार्य या साधना ही जैन शासन में "निर्जरा" के नाम से विख्यात है।

पूर्व और उत्तर की ओर मुख करके ध्यान की, जाप की जो विधि है वह भी महत्वपूर्ण है और श्वांस की गति उस अवस्था में विपरीत दिशा के प्रमाणुओं को कार्माण शरीर से भिन्न करने में किसी अंश में सहयोगकारी है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न कार्माण शरीर की अवस्था पर विचार किया जा सकता है।

१. कार्माण शरीर से जीव बन्ध युक्त होने के कारण अपने बल-ज्ञान इत्यादि का विकास नहीं कर सकता। तो क्या इस दशा को ही जीव, कष्ट पाता है। ऐसा कहा जाता है। एक राजा को युद्ध काल में बन्दी होने के कारण स्वतन्त्रता विहीन होने से कष्टकारी जीवनव्यतीत करना पड़ता है। सब ऐश्वर्य जेल में पराप्त होने पर भी स्वतंत्रता विहीन होने से उस समय का उसका जीवन

कष्ट युक्त कहा जाता है। यही अवस्था जीव की कार्माण शरीर के योग से है। अगर यह कष्ट नहीं है तो यह अमूर्तिक जीव, जड़-अचेतन और मूर्तिक वस्तु में किस प्रकार दुःख व कष्ट प्राप्त करता है और उस दुःख और कष्ट की परिभाषा क्या है?

२- क्या हर समय इन कर्मों के योग में ही इस मनुष्य-पशु पक्षी के शरीर को कष्ट अथवा रोग प्राप्त होते रहते है। अगर कहा जाये "हां" यह सत्य है तो औषध सेवन से क्यों तत्काल लाभ होता है। क्या हमें चारवाक मत की शरण में जाकर उनके मत को इस अंश तक सत्य मानना पड़ेगा कि यह शरीर वायु-जल सूर्य आदि से रक्षा युक्त है। औषध, जड़ कर्म पुद्गल प्रमाणुओं पर अपना प्रभाव नहीं दिखा सकती परन्तु पदार्थों द्वारा रचना युक्त वस्तु पर अपना प्रभाव देती है अस्तु यह भी विचारना होगा कि कर्म प्रमाणु की कार्यप्रणाली क्या है ? किन-किन अवस्था में वह अपना कार्य करता और प्रभाव युक्त होता है।

(द) जैन शासन में अकाल मृत्यु के विषय में क्या कहा है ? क्या समय से पहले अन्य घातिया कर्मों के अनुसार आयु कर्म को भी क्षय किया जा सकता है। अगर नहीं तो फिर निश्चय से अकाल मृत्यु क्या है ?

(व) ऐसा प्रतीत होता है कि जैन शासन में बहुत से ग्रंथ या तो स्वाध्याय में नहीं आए या पूर्व समय में नष्ट हो गए, जिससे कर्म प्रकृति का हमको पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका। जैन शासन में इस प्रकार के ग्रन्थ है परन्तु लेखक को उन का ज्ञान न होने से उनके विषय में कुछ नहीं लिखा जा सकता। अतः उन ग्रन्थों का हमें यथा शक्ति, ज्ञान प्राप्त करने का उपाय करना चाहिये।

यह कहना कि कर्म का उदय स्वयम् होता रहता है यह भी सत्य नहीं है। कारण काल, धर्म, अधर्म द्रव्य भी कर्म के उदय में सहायक है। श्वांस की गति कर्म बन्ध, निर्जरा और ध्यान में विशेष महत्व रखती है। अस्तु यह जानने के लिए कि कर्म कब और किस प्रकार उदय में आता है हमें इन वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

काल चक्र का स्वरूप अथवा गति

काल की गति क्या है ? काल के प्रमाणु का क्या स्वरूप है ? ध्यान के योग में देखने से पता लगता है कि काल गति "घड़ी" के सीतर के समान है। और उस गति से ही कार्माण शरीर के कर्म प्रमाणुओं में प्रकम्पन पैदा होता है और उस प्रकम्पन से जो कर्म प्रमाणु अग्र भाग में आते हैं जीव के तेजस शरीर में योग प्राप्त करके फल प्रदान करते हैं। स्वांस की गति ध्यान का साधन है अस्तु कर्म प्रमाणुओं के उदय और अस्त में सहायक है।
विचारना है:

(अ) स्थूल शरीर पर कर्म प्रमाणुओं का क्या प्रभाव होता है ?

(आ) औषध आदि के सेवन से शरीर रोग रहित होता है उस समय कर्म का क्या प्रभाव होता है ?

(इ) विशेष औषध से शरीर चेतना रहित अथवा मूर्छित अवस्था को प्राप्त होता है। उस समय कर्म का क्या प्रभाव होता है ? क्या यह सब कर्म के उदय से ही शरीर के परिवर्तन होते हैं या इन कर्मों का शरीर पर कोई प्रभाव नहीं होता और चार्वाक मत के अनुसार वात, अग्नि आदि पांच तत्वों से शरीर की रचना होने से जड़ वस्तुओं औषध आदि का प्रभाव होता है और विकारों या रोगों को दूर करने में सहायक है, इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जीव शरीर से भिन्न पदार्थ है और औषध आदि, कर्म जड़ प्रमाणुओं से प्रभाव रहित है अर्थात कर्म जनित दुःखों का अभाव है।

१. जैन शास्त्र के अनुसार कई प्रकार के परमाणु हैं। कुछ पुद्गल परमाणुओं में कर्म प्रमाणु होने के गुण हैं। इन प्रमाणुओं का विस्तार पूर्वक वर्णन क्या है और क्या कारण है कि इन में से परमाणु ही कर्म पुद्गल प्रमाणु होने के गुण धारण करते हैं ? जयधवल महाधवल में पूर्ण कर्म वर्गणाओं का विस्तार देखें। कर्म पुद्गल प्रमाणु जड़ है वह कैसे जीवको बन्ध युक्त करते है

२. जिस समय आत्मा का कर्म आश्रव होता है असंख्यात कर्म पुद्गल परमाणु आत्मा से लिप्त होते हैं। यह क्रम हर समय चलता रहता है जब तक

कि जीव तप-ध्यान के द्वारा कर्मों का आश्रव बन्ध नहीं रुकता। यहां पर निम्न प्रश्न पैदा होते है।

(अ१) कर्म पुद्गल प्रमाणु जड़ है। मूर्तिक है. जीव चेतन्य है अमूर्तिक हैं। फिर यह जड़ पदार्थ किस प्रकार अमूर्तिक वस्तु के साथ लिप्त होते हैं।

(२) कर्म पुद्गल परमाणु जड़ पदार्थ जड़ वस्तु बिना किसी अन्य सहायता या सचालन शक्ति द्वारा स्वयम् कार्य नहीं करते। ऐसी अवस्था में कर्म पुद्गल परमाणुओं का जीव के साथ बन्ध होने का क्या कारण है और वह क्या क्रिया है जो ऐसा होता है। क्या काष्ट की गदा स्वयम् ही शत्रु पर प्रहार कर सकती है. कदापि नहीं।

परन्तु वास्तव में हम जैन आगम् के अनुसार यह जानते हैं कि कर्म बन्ध होता है।

वास्तव मे यह Theoratical Form पुस्तकीय ज्ञान मे तो सही है परन्तु वास्तव में वह क्रिया रूप और कारण क्या है जिस से यह सब क्रिया प्रति क्षण होती रहती है यह जानना नितान्त आवश्यक है। उन जड़ कर्म पुद्गल प्रमाणुओं को जो लोक मे असख्यात है क्या आवश्यकता थी कि दौड़ कर स्थान भ्रष्ट हो कर एक जीव को जकड़ लेते।

२. कर्म पुद्गल प्रमाणु जीव के साथ कार्माण शरीर से बन्ध युक्त होने पर भी अपना स्वभाव नही छोड़ते और न ही जीव अपना स्वभाव छोड़ता है। पुन: फिर क्या कारण है कि वह जड़ पदार्थ जीव रूपी चैतन्य वस्तु को कष्ट-कारी हो और वह भी बिना प्रयोजन के। जीव महान बलयुक्त है। परन्तु इन जड़ कर्मों ने इस की शक्ति को बाह्यरूप मे क्षीण कर रखा है। तो क्या यह कर्म पुद्गल प्रमाणु जीव से अधिक बल शाली है जो इसके पराभव के कारण हुए है। हम जानते है कि भाप अति बलयुक्त है परन्तु लोहे के Boiler में बन्द होने पर वह शक्ति हीन के समान है

४. जीव अपनी शुद्ध दशा में इस लोक में भ्रमण-युक्त न हो कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त करता है और मोक्ष स्थान युक्त होता है।

५. अब विचारना है कर्म पुद्गल प्रमाणु जड है। स्वय क्रिया शील नही है परन्तु व्यवहार मे जैन धर्म, सनातन धर्म, यही कहता है कि कर्मो के अनुसार होता है और वैदिक धर्म कहता है कि ईश्वर के द्वारा कार्ययुक्त होता है। जीव की शक्ति द्वारा कर्म प्रमाणु का संचालन ही जड़ पदार्थ अपना कार्य करता है

६. वास्तव मे अगर विचार किया जावे तो तीनों मतों वाले ही स्वय मे सत्य की झलक से युक्त है परन्तु किस अपेक्षा मे, यही विचारने योग्य है। इस का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है जिसे हम अपनी परिभाषा मे समयक्त कहते है और उस ज्ञान को प्राप्त करने के मार्ग पर चलना ही समयक्त प्राप्ती का मार्ग है। वह मार्ग क्या है शास्त्र स्वाध्याय: अथवा ध्यान। जहाँ जिस समय तक शास्त्र स्वाध्याय के साथ ध्यान नहीं होगा उस समय तक का ज्ञान केवल पुस्तकीय ज्ञान है।

७. अगर हम उस शक्ति को जान सके जो कर्म प्रमाणुओं के आश्रव का कारण होती है तो ही हम को समयक्त-ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है अन्यथा नहीं। वास्तविक रूप से हम एक भ्रमणा मे लिप्त है और मुख्य कारण की अवहेलना करके गौण वस्तु को यथार्थ समझ कर अपने आपको ज्ञानी के पद पर आरूढ करते है जो समय पा कर विलीन भी हो सकता है और ज्ञान की ज्योति युक्त होने से समयक्त युक्त भी हो सकता है। यही कारण है कि पंचम काल मे प्राणी अधिकतर समयक्त हीन होंगे। परन्तु वास्तव मे ऐसा नही है। महावीर स्वामी के निर्वाण काल से ५००० वर्ष तक हम अपनी शक्ति द्वारा बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते है। हम वास्तविक रूप मे जिज्ञासा युक्त होने पर अगर उस शक्ति को जानने का उपक्रम करे तो निम्न वस्तुओं का भेद और अन्तर स्वयम् ही ज्ञान हो जायगा—

(अ) जीव और आत्मा (इ) केवल ज्ञान और इलहाम (हृदय से शब्द का निकलना और कानों मे सुनाई देना)

(आ) तप-ध्यान-योग-समाधि।

(ई) कर्म आश्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा की क्रियायें।

(ऊ) कर्म पुद्‌गल प्रमाणुओं का स्वरूप और क्रिया।

८. इन में सबसे पहिले इन पुद्‌गल-कर्म-परमाणुओं का पूरा ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है बिना उसके जाने उन की क्रिया का ज्ञान असम्भव है। उसके पश्चात हमें उस शक्ति अथवा कारण का उपयोग-युक्त होने के कारण को जानना है। जिसे हम अपनी परिभाषा में व्यवहार में कर्म शक्ति कहते हैं और वेद पुराण आदि उसको ईश्वरीय शक्ति कहते हैं। परन्तु वास्तव में वह क्या है। ईश्वर की सत्ता महत्वपूर्ण तीनों जगह एक ही है परन्तु उसकी कर्म-प्रणाली भिन्न भिन्न है।

समयक्त

ज्ञान का वास्तविक स्वरूप ही समयक्त है इसकी परिभाषा जीव के लक्षण का पूर्ण ज्ञान होना ही समयक्त है यह शुद्धनय से विचारा जाता है और शुद्धनय ही जीव के लक्षण का ज्ञान देने में समर्थ है यही अवस्था आने पर वह प्राणी विचारता है कि मैं कौन हूं और मेरा स्वरूप क्या है जब यह विचार उत्पन्न होता है तो उस प्राणी का संसार का नव प्रकार का नया दृष्टिकोण बनता है और वह समझने लगता है कि मेरा शरीर तथा संसार का क्या सम्बन्ध है और मेरा कार्य क्या है। जीव अनन्त ज्ञान युक्त बल युक्त होने पर भी कार्माण शरीर से युक्त होने पर बलहीन के समान दृष्टि में आता है। जीव का वास्तविक ज्ञान शुद्ध नय से ही जाना जा सकता है

केवल ज्ञान

जीव का लक्षण क्या है जीव के निज गुण स्वरूप की अवस्था में आना ही केवल ज्ञान है यही ऐसा ज्ञान है जिससे तीन लोक दृष्टिगोचर होते हैं और इस स्थान पर होते हुए भी वह तीनों लोकों को ऐसा देखता है जैसे प्रत्यक्ष हो इसी अवस्था को केवल ज्ञान की अवस्था कहा गया है

स्वरूप: कार्माण शरीर से जीव रहित होने पर परन्तु, नाम आयुकर्म, गोत्र

मे वेष्टित होने पर इस पृथ्वी पर स्थित है तन मे रहित होने पर वह परम धाम मोक्ष में तिष्ठता है और अपने ज्ञान ज्ञान मे लीन रहता है

यही जीव का वास्तविक ज्ञान है और यह अवस्था केवल ज्ञान के समय प्रकट होती है ।

ध्यान

उपदेश चारण मुनि (कैलाश पर्वत स्थित)

ध्यान दो प्रकार का है : आत्म ध्यान जो शरीर से मोह त्याग कर अपने जीव मे लीन होना है ।

दूसरा ध्यान : जो संसारिक कार्य के निमित्त, किसी दैविक शक्ति मे लीन होना है ।

आर्त्त, रौद्र, धर्म, तथा शुक्ल ध्यान का वर्णन ग्रंथों मे उपलब्ध है ।

आत्म ध्यान

पहिले ध्यान करने वाला विचार करता है मुझे अब इस शरीर से मोह नहीं है कारण यह शरीर नाशवान है इसका प्रयोग कोई नहीं है परन्तु वास्तव में जीव ही एक पदार्थ है जो तीनों लोक मे अपनी अवस्था नहीं बदलता एवं समान रहता है और सदा एक ही रूप मे रहता है ।

ध्यान करने वाला इस प्रकार विचार कर अपने इस शरीर का ... त्याग कर अपने स्वास को हृदय तथा नाभि मे स्थित करने का अभ्यास करता है और अभ्यास करते करते एक समय आने पर वायु का वेग हृदय मे रहकर हृदय गति को स्वयम् संचालन करती है । शरीर के अन्य अवयव सब निश्चल और स्वांस रहित रहते है । यही अवस्था कर्मों के निर्जरा की है । यह अवस्था उस ध्यान की है जिसे आत्म ध्यान कहते है और इसी अवस्था मे जो ध्याता को अनुभव, आनन्द प्राप्त होता है वह संसारिक सब आनन्दों, भोग विलास से विलक्षण होता है । यही अवस्था अगर कुछ समय रह सके तो यह धर्म ध्यान तथा शुक्ल ध्यान मे ले जा कर अन्त मे कार्माण शरीर का समूल नष्ट कर मोक्ष पद को देने वाली है ।

श्वास चाहे, दायें ओर में हृदय में जावे या बांए ओर में दायें ओर में शीघ्र अवस्था को प्राप्त कराने वाला है बायें ओर में श्वास कुछ अधिक समय लेता है। चाहे वायु किसी भी कोन में जावे हृदय म पहुंच कर स्थिर हो जाती है।

श्वास लेने समय चाहे आधा घंटा, चाहे एक घण्टा पुनः पूरा दिन और अधिक समय यह चक्र चल सकता है।
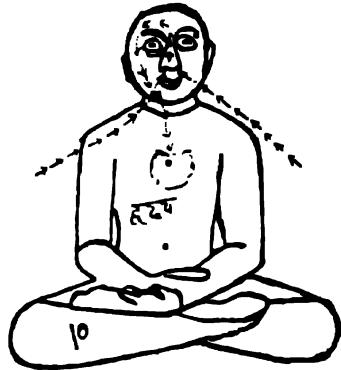
इस अवस्था में मस्तक पर श्वेत बिन्दु दृष्टि गोचर होते है जो दूध के समान सफेद और केशर के समान सुगन्ध युक्त होते है। यह बाह्य रूप लक्षण इस अवस्था के है।

कैलाश पर्वत पर स्थित मुनिराज का उपदेश

(श्री चक्र पदधारी श्री मुनि विजय कीर्ति तथा मुनि मानड श्री नाभि नाथ)

यह चक्र जब पूरा होता है तो श्वास की गति कोलाहल रहित मन्द और हृदय में शान्ती पैदा करने वाली और ज्ञान चक्षु को देने वाली है। इस, योग से मोहनी कर्म की शान्ती होती है और देव गति का बन्ध होता है॥
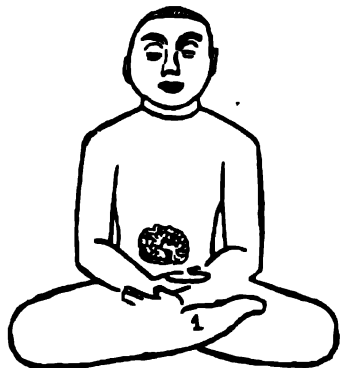
अगर जाप का यह विधान हो तो वह पुरुष जाप में मन लगाने से गन्धर्व गति को पाता है। यानि गन्धर्व जाति का देव होता है।

स्वांस दोनों नासिका में जा कर मस्तक में से होकर नाभि के पास हो कर पुनः मुख से बाहर निकले। इस प्रकार से जो मुनि ध्यान करते है वह तीसरे स्वर्ग में जाते है।

श्वांस नासिका में जा कर मस्तिक से होता हुआ गृवा में होता हुवा हृदय और नाभि के दरमयान में होता हुआ मुख में बाहर निकले। इस प्रकार के ध्यान के करने वाले दूसरे स्वर्ग में जाते है।
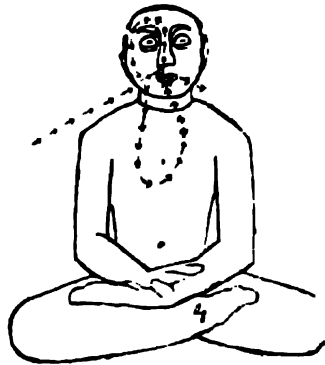
श्वास नासिका में चलकर मस्तक में होता हुआ नाभि के पास होता हुआ मुख में पुनः बाहर निकले। इस प्रकार के ध्याता प्रथम स्वर्ग में जाते है।
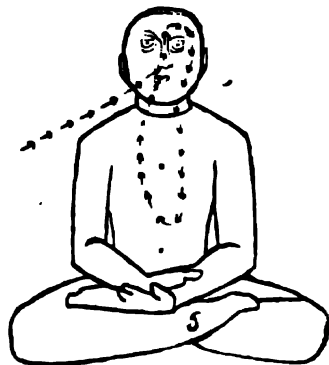
इस प्रकार के ध्यान के करने वाले की अगर क्षण मात्र भी हृदय के अन्दर वायु का प्रवेश होकर वायु के योग से हृदय की गति स्तथम् करने शरीर को

अवस्था योग में हो और मन वचन काया का योग हो। हृदय की गति से मस्तक में तेजो लेश्या जाग्रित हो तो यह तप तपने वाला पुरुष मुनि ध्यान के प्रभाव से ५वें स्वर्ग अथवा लोकान्तिक देव हो जावे वा चक्री पद पावे।

आधे घण्टे के श्वास की अवधि वाला चतुर्थ स्वर्ग में जावे ॥

दृष्टि नासिका पर श्वास कभी मुख से कभी नासिका से

हस्त नाभि से नीचे आसन युक्त

शरीर निश्चल
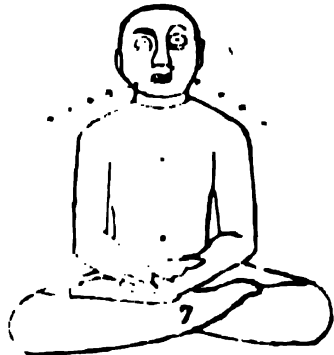
परन्तु मन में चिन्ता, विचार, अशान्ती, इस प्रकार के ध्यान में रह जावे इस शरीर को त्यागने के बाद—

अगर ध्यान ५ वर्ष किया हो तो ३ योजन पर जावे। ६ वर्ष किया हो तो ७ योजना पर जावे। ७ वर्ष से १० वर्ष तक ७ से १५ योजन तक उत्तर, पूर्व, पश्चिम कोन में ११ वर्ष से १३ वर्ष तक तो जीव २० योजन तक अग्नि वाला २१ से ४१ योजन तक परन्तु जाप का समय हो २ घड़ी, ४ घड़ी

मृत्यु के समय मुख से श्वांस लेने पर जावे ३ योजन तक कान-नाक अथवा आंख से जावे ८ योजन तक मस्तक या सिर से जावे १५ योजन तक चर्म से या बांह आदि से जावे पशु पर्य्याय :

अगर श्वांस हृदय में रह जावे तो ध्यान के करने वाले को चाहिए कि मस्तक में या नासिका में वायु के योग से जाप करे तो वायु हृदय से नाभि में जावे।

पुनः नाभि से चार ऊंगल हस्त उठा कर रखे। वायु पुनः हृदय से होकर मस्तक की ओर गमन करे परन्तु मुख में विलीन हो जावे। दृष्टि दृढ होने से वायु नासिका तक पहुंचे। आसन दृष्टि-नासिका कम्पायमान न हो वायु का वेग चले जाप पूरा हो तो मस्तक में वायु जावे।

पार्श्व मणि (Touch Stone)

जिस मनुष्य ने अपने जीवन काल में लगभग ५०००००० नवकार मन्त्र का रीति अनुसार मन वचन काय से जाप किया हो तो वह पुरुष इस विधि से १२५००० नवकार मन्त्र का जाप करके चिन्ता मणि रत्न को पार्श्व रत्न (Touch stone) में परिवर्तन कर सकता है। विधि श्वांस दाईं नासिका से चलकर हृदय में होता हुआ नाभि स्थान से गुजर कर सिर के ऊपरी भाग

मस्तक से होकर दायीं नासिका में बाहर निकले और वह श्वास बाहर निकल कर चिन्ता मणि रत्न पर जिसको पार्श्व रत्न में बदलना है पड़े टकराये।
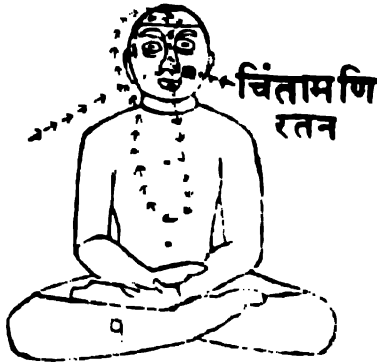
इसमें पार्श्व मणि का गुण चिन्तामणि रत्न में प्रकट हो जायगा। साथ में क्रिया करने वाला भी स्वर्ण हो जायगा नासिका से श्वास चलते समय नवकार मन्त्र साथ चले और दाईं नासिका से निकली ध्वनि के साथ श्वास का विसर्जन हो।

बहरांग सूत्र

अगर समझ सको तो बहरांग सूत्र को समझो जैन दर्शन का मूल है। वह मणि मुद्रा क्या है और जैन धर्म का लक्षण क्या है सब बता देगा।

बहुरूपनी विद्या

मैं स्वर्ण गिरि पर्वत पर बहुत समय से विश्राम कर रही थी। तुम्हारा ज्ञान पूर्ण करने के हेतु मुझे श्री मुनि सुभद्राचार्य ने कहा उसे बताओ 'बहरांग सूत्र' यह जैन दर्शन की परम्परागत से मुनियों के उपदेश द्वारा जाना जाता रहा है। अन्तिम मुनि श्री भद्र बाहु को यह ज्ञान प्राप्त हुआ उसके बाद से यह प्रथा नहीं रही। उस ज्ञान को बहरांग सूत्र कहते हैं।

प्राप्त करने की विधि—

ज्ञान के हेतु जीवन पर्यन्त जिन शासन में धैर्य से लगन के साथ व्यवहार नय को त्याग कर निश्चय नय में निकल कर शुद्ध नय के ध्यान में लीन होकर मन वचन काय से उस नय को अपनाओ काल पाकर बहुरांग मूत्र तुम्हारे सामने प्रकट होगा और ज्ञान का समुद्र तुम्हारे सामने होगा।

जीव का लक्षण और वैराग्य

जीव —परम आनन्द का भोक्ता, चेतना युक्त, निज स्वरूप में लीन, व्याघा रहित, अनन्त ज्ञान युक्त, बल युक्त है कार्माण शरीर के कारण जीव को संसार भ्रमण करना पड़ता है। और संसार परिभ्रमण करते हुए भी जीव की वही अवस्था रहती है। उसमें परिवर्तन नहीं होता। न ही ज्ञान का नाश होता है और सदा अनन्त सुख का भोक्ता रहता है। इस कार्माण शरीर के आवर्ण के कारण हम जीव की सत्ता को भूल कर उसे अनन्त ज्ञान हीन तथा कष्ट का भोक्ता समझ बैठे हैं।

संसारी जीव : (आत्मा) जीव कार्माण शरीर से युक्त है।

मोह : एक प्रकार की आकर्षण शक्ति, जो कर्म (परमाणु) समूह से जीव की शक्ति द्वारा, कार्माण शरीर से निकलती रहती है और दिशा दिशान्तरों में अपना कार्य करती है।

वैराग्य : जीव की शक्ति द्वारा, जब कर्म वर्गणाओं को बल प्राप्त नहीं होता और वह अपना कार्य करने में असमर्थ होते हैं तो उस समय की दशा जो होती है वह वैराग्य कहलाती है कारण कि उस समय वह प्राणी सगारी कामणाओं, भावनाओं से रहित होता है। और केवल निज गुण स्वभाव का विचार करता है। उस अवस्था में मन शून्य की अवस्था में विचार रहित होता है।

जीव का ज्ञान कैसे हो ?

जब यह प्राणी अपने उपक्रम से, यत्न से, शक्ति से, ध्यान का योग लगा

कर कार्माण शरीर तथा कर्म वर्गणाओं का अस्त करता है। तो उसी समय जीव की शक्ति जो हर समय चलती रहती है उसकी गति पर अवरोध न होने से वह शक्ति एक प्रकार के दिव्य ज्ञान के रूप में प्रकट होती है और वह प्राणी उसी ज्ञान के उपयोग से अपनी दशा को समझता विचारता है और पुनः उसी ज्ञान की अवस्था को प्राप्त होने को अग्रसर होता है। यही अवस्था वैराग्य पाने अथवा वास्तव में वैरागी की है। जब तक कार्माण शरीर से कर्म प्रमाणु शिथल नहीं होंगे कोई भी प्राणी "वैराग्य" पाने में असमर्थ है। यही लक्षण वैराग्य का है। अगर वैराग्य पाना है तो ध्यान की शक्ति से कार्माण शरीर को नष्ट करो और अपनी आत्मा का सफल करो।

जाप

जाप : चैतन्य अवस्था में स्वयम् को अपने गुण स्वभाव में लीन करना जाप है। जाप ५ प्रकार के है।

लोक व्यवहार : पुरुष माला लेकर बैठ जावे। जाप का स्वरूप रचे। मन की स्थिरता न हो।

लोक प्रदर्शन : जाप का स्वरूप बनावे परन्तु मन की अवस्था-पूर्ण रूप से ध्यान न लगे, परन्तु काया का स्वरूप ठीक बन जावे।

लोक सम : निद्रित अवस्था के समान मन और शरीर की अवस्था हो। मन निद्रा और तन्द्रा की अवस्था में हो। शरीर अपने वश में न हो : ऐसा भान हो पुरुष सो रहा है। परन्तु मन की गति तन्द्रा में हो तो वह लोक सम जाप है।

लोक नय : यह मन की अवस्था का सूचक है। मन ध्यान की तरफ चल पुनः अपनी अवस्था पर लौट आवे शरीर शान्त रहे। आसन बना रहे।

लोक लोक : मन ध्यान में हो। आसन अचल हो। मस्तक बाहु नासिका अचल रहें। परन्तु जंघा पर भार न देकर शरीर को ऐसी अवस्था में रखे कि शरीर पूर्ण रूप में वायु के वेग पर ठहरे यानि निश्चल आसन।

मंगला मूर्ति विद्या द्वारा जाप का स्वरूप
ओ नमो सर्व केवलीभ्यो नमो नमः

नमस्कार जाप की विधि बतानी है।

जाप क्या है। जाप एक प्रकार का ध्यान ही है। इसमें जीव की शक्ति द्वारा जो स्वांस की गति होती है। वह वायु को शरीर में एक प्रकार से भ्रमण कराती हुई बाहर पुनः वायु में विलीन हो जाती है। और जब वह शरीर में भ्रमण करती है तो शरीर के अन्दर एक विशेष प्रकार की ध्वनि वह करती है और वह ध्वनि कार्माण शरीर में टकराती हुई अन्दर हृदय के पास से होती हुई नासिका के पास से शरीर से बाहर होती है ध्वनि मन्त्र की शक्ति जिसका जाप किया जा रहा है। उसके अनुसार (रचना के अनुसार) वह कार्माण शरीर को बेधती है अगर वह बेधक बराबर होता रहे तो कार्माण शरीर में एक प्रकार का छिद्र होने लगता है और उस स्थान के कर्म प्रमाणु अपने स्थान से भ्रष्ट होने लगते हैं। अगर यह अवस्था कुछ समय चल जावे तो जीव की शक्ति बाहर भी अग्रसर होने लगती है। और यही ज्ञान का लक्षण और कारण है।

संसार क्या है। जीवन क्या है। मृत्यु क्या है

संसार और जीवन स्वप्न है जो इस को समझ जायगा वह संसार से पार हो जायगा कल्याण कारी क्या है! ज्ञान प्राप्त करना। ज्ञान किसी भी प्रकार का हो सकता है। वास्तव में ज्ञान क्या है धर्म रूपी जीव का शुद्ध ज्ञान चन्द्रमा सूर्य के सामने चमकने वाला ही वास्तविक ज्ञान है।

जब तक प्राणी को यह मालूम न हो कि मैं कौन हूं। कहां से आया हूं कहां जाना है या यहां पर ही मिट्टी या अग्नि में समाप्त हो जाना है उस समय तक ज्ञान का अभाव ही है। स्वयम् को समझना कि मैं कौन हूं ज्ञान का मार्ग है

अतः प्राणी को चाहिए कि उस ज्ञान को प्राप्त करने के वास्ते कुछ उपाय विचारें ताकि अपनी अवस्था विचार सकें वह उपाय है धर्म के लक्षण का रूप जानना वह तीन प्रकार से प्राप्त हो सकता है।

१. अधिक स्वाध्याय:

२. स्वाध्याय: तथा ध्यान: दोनों साथ साथ चलने से स्वाध्याय अधिक लाभ दायक होती है

परन्तु स्वाध्याय क्या है। कौन इस को समझता है यही समझा जाता है कि हम ने शास्त्र पढ़ लिया स्वाध्याय हो गई। क्या इस स्वाध्याय में जो ज्ञान प्राप्त हुआ वह ज्ञान वास्तविक और स्थायी ज्ञान है और क्या इस पर जीवन आधारित रह जायगा अगर नहीं तो क्या वह स्वाध्याय है इस पर विचारना प्राणी का मुख्य कार्य है स्वाध्याय: के साथ उस ज्ञान को अपने जीवन में लाना वास्तविक स्वाध्याय: है।

३. ध्यान: ध्यान ही एक ऐसी अवस्था है जो जीव का पूर्ण ज्ञान प्रदान करती है।

अगर ध्यान हो और साथ में शास्त्र की स्वाध्याय: भी हो तो फिर बहुत थोडे समय में ही उसे जीव का लक्षण, गुण और ज्ञान प्राप्त होने लगता है और समय पाकर वह जीव की संज्ञा को समझने लगता है।

जबइस प्राणी को जीव का ज्ञान होने लगता है तो वह समझने लगता है

संसार क्या है—मृत्यु क्या है

संसार एक भ्रमणा है। यह प्राणी संसार को सब कुछ समझ कर इसी में लुप्त हो जाता है और इस प्रकार एक योनी छोड़ कर अन्य योनियों में भ्रमता फिरता है और यही उस का संसार बन जाता है। एक शरीर को त्याग कर दूसरा शरीर धारण करना पहिले शरीर की मृत्यु है। और यही वास्तव में संसारी प्राणी जीव की अथवा अपनी आत्मीय की मृत्यु की संज्ञा देते है

मृत्यु ॥ संसार और जीव का ज्ञान होने पर इस प्राणी के सामने क्या शेष रह जाता है जब वह संसार को जानने लगता है कि संसार क्या है और संसार में सार नहीं है। अनित्य है। इसमें मधु मक्खी की तरह फिर यही इस शरीर का कार्य है तो एक समय ऐसा आता है कि यह अपने आप को इस संसार से निकालने का विचार करने लगता है और समय पाकर निकल जाता है

परन्तु अगर हम निश्चय नय या शुद्ध नय में जायें तो सत्य क्या है इसका ज्ञान प्राप्त होता है।

जीव की शक्ति के हर समय प्रवाह युक्त होने के कारण कार्माण शरीर के क्रिया युक्त होने के कारण हम संसारी प्राणी जीव को सब कार्यों का कर्त्ता मान बैठे है अर्थात सब अच्छा बुरा कार्य ईश्वर कृत (जीव ईश्वर की संज्ञा होने से) मान बैठे है और अपने आप को सब प्रकार से मुक्त कर लेते हैं परन्तु अपने अज्ञान के कारण हम अपने कार्माण शरीर की शक्ति को नहीं जानते और जिसके कारण हम संसार में भ्रमण युक्त है। यह सत्य है कि इस कार्माण शरीर की शक्ति जीव से ही प्राप्त होती है (जीव की शक्ति हर समय हर तरफ फैलती रहती है जैसे Radio Waves) सब तरफ प्रवाह करती रहती हैं और हर तरफ जाने में बाधा युक्त नहीं है।

परन्तु जीव कार्माण शरीर में घिरा होने के कारण वह शक्ति कार्माण शरीर को भेद कर बाहर नहीं निकलती और कार्माण शरीर के परमाणु शक्ति युक्त होते रहते है और अपना प्रभाव देते रहते है और इसी प्रकार यह जीव संसार में भ्रमण करता रहता है

अब विचारना है कि इस बन्धन से जीव कैसे मुक्त हो इसका साधारण सा उत्तर है किसी भी प्रकार से जीव शक्ति और कार्माण शरीर में सूक्ष्म अन्तर पैदा करा दिया जावे जिससे कार्माण शरीर के परमाणु उस जीव शक्ति को ग्रहण न कर सकें वह उपाय है ध्यान का मार्ग। इस मार्ग से ससारिक बन्धनों से मुक्त होकर समय आने पर अपने लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त होता है

ध्यान के मार्ग पर चलने से यह प्राणी, संसार, जीवन, मृत्यु, ज्ञान का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके और कार्माण शरीर को नष्ट करके परम धाम में निवास करता है तथा इनके ज्ञान के प्राप्त होने पर अपने कल्याण का मार्ग लेता है

विनयचन्द

मेरु पर्वत तथा अकृत्यं चैताल्य

यह संसार (तीन लोक) के मध्य में एक पर्वत के रूप में, इस पर्वत पर असंख्यात जिन बिम्ब, अकृतम चैत्यालय और जिन मन्दिर है जिनमें मनोज्ञ जिन प्रतिमाएं स्थापित है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है यहां प्रतिमा कैसे बनी किसने स्थापित की अथवा इनका प्रयोजन क्या है। जिस काल में पूर्व जिन तीर्थंकर नहीं होते तो प्रतिमा कैसे बनी।

जब काल का परिवर्तन होता है तो दिव्य शक्तियां इस लोक में वैभव युक्त जिन प्रतिमाओं को रक्षनार्थ इस लोक में लाकर वहां विराजमान करती हैं और जो यहां भवन बने है उनमें स्थापित होने के बाद अकृतम चैत्यालयो के नाम से विख्यात है। अकृत्यं चैताल्य कुछ इस प्रकार के बने है कि वह एक प्रकार की गुफा का रूप लेकर चलते है और बहुत से चैत्यालय बहुत लम्बे और ऊंचे हैं कारण पर्वत की कन्दराएं बहुत बड़ी-छोटी होने के कारण यह चैत्यालय भी उसी के अनुसार विस्तार वाले है और जो यहां मुनि विहार करते हुए आते हैं और देव गण आते है, वह यहां पर अपना ध्यान तथा दर्शन करते हैं। अकृत्यं चैताल्य निर्मानित न होकर पर्वतों की कन्दरायें ही है

दर्शन पुष्प से अथवा भाव से करते है नैवेद्य का यहां अभाव है।

मेरु की रचना इसी रूप में चली आ रही है। कम या ज्यादा विस्तार नहीं होता समुद्रों से रक्षित है।

विमान वासी देव अधिकतर उच्च स्थानों पर आते है। मनुष्य यहां अपनी देह से नहीं पहुंच सकता।

धर्म चक्र

यह चक्र एक प्रकार का रत्न है और इसका महत्व जैन दर्शन का प्रकाश और ध्वजा को ऊंचा रखना है यह जब तीर्थंकर अपने समवशरण के साथ चलते हैं तो यह धर्म चक्र सब से आगे विराजमान होता है और देव गण इसकी रक्षा के हेतु इस चक्र से, चक्र के समान चलने वाले आयुद्ध लेकर साथ

चलते है। अगर किसी कारण वश कोई आपत्ती हो तो उससे चक्र की रक्षा करते हैं।

चक्र का व्यास बहुत अधिक होता है। और उसे चक्र वाहिणी विद्या द्वारा रक्षित करते हुए देव गण आगे लेकर चलते हैं उससे एक प्रकार का तेज तथा एक प्रकार की ध्वनि निकलती है जो सब को विदित करती है कि जिनेंद्र भगवान तीर्थंकर का समवशरण आ रहा है और जहां पर चक्र ठहर जाता है। वहां पर ही समवशरण भी ठहरता है और पुनः रचना होती है। यहां पर मनुष्य तो कदाचित न हो परन्तु अनेक जाति के देव उपस्थित होकर पृथ्वी पर समवशरण का रचना करते है और वहां पर गधकुटी बना कर तीर्थंकर स्वामी की स्थापना तथा विराजमान करते है। कैसे हैं तीर्थंकर जिनका शरीर देदीप्यमान है स्वर्ण के समान, तेज आभा युक्त सूर्य रश्मियों से तथा चन्द्रमा की शीतलता से युक्त, शरीर का तेज शीतल रश्मि का प्रदान करता है।

दिव्य ध्वनि

अतः सूर्य चन्द्रमा दोनों के तेज से भूषित होता है शान्त मुद्रा तथा सर्व और सुगन्ध युक्त वायु का संचालन रोग शोक महामारी से वंचित ऐसा चारों ओर दृष्टि में आता है। तथा समय पर उनके शरीर से वायु की गुंजार के समान वायु का शब्द उत्पन्न होता है और यह चारों ओर फैल जाता है। इसको दिव्य ध्वनि कहा जाता है। यह शब्द रहित ध्वनि हर प्राणी के कार्माण शरीर को भेद कर जीव से सम्बन्ध स्थापित करती है ज्ञान का उदय होता है और जो भ्रम शंका उस प्राणी को होती है उसका समाधान होता है।

यह चक्र रत्न का वर्णन है।

जो प्राणी चक्र रत्न का दिव्य स्वरूप देखता है। वह निश्चय से मोक्ष गामी होता है। समय पाकर नश्वर शरीर को त्यागकर मोक्ष पाता है।

जैन दर्शन

यह जीव का पूर्व और आगामी समय का वास्तविक पूर्ण लक्षण बताने वाला कथन है

अब लक्षण क्या होना है ? ज्ञान का उपार्जन धन सम्पत्ति आदी से मोह का त्याग और वैराग्य भावना यह जानना कि आत्मा शरीर और जीव तीनो का सम्बन्ध क्या है "और तीनों किता क्या है" अब तुम सम्यक्त के लक्षण का विचार करो जीव का शुद्ध नय से ज्ञान होना तथा जीव का कार्य और मन की अवस्था का ज्ञान ही सम्यक्त के लक्षण की ओर अग्रसर करना है जीव द्रव्यज्ञान का भण्डार, दृष्टा-अदृष्टा तथा एक प्रकार की ज्योति युक्त ऐसा पदार्थ जो सदैव एक प्रकार से रहता है और उस में अन्तर नहीं पड़ता का ज्ञान जैन दर्शन है । कर्माण शरीर सहित अदृष्टा है

तीर्थंकरों के कल्याणक सूर्य और चन्द्रमा पर

चन्द्रमा कैसा है निष्कलंक सूर्य तेज युक्त परन्तु क्या वहां पर तीर्थंकरों का कल्याण होता है ? यह एक प्रश्न है

वहां पर जो अकृत्रिम चैत्यालय है वहां पर जिन बिम्ब जो विराजमान है उन के न्हवन जल से इस प्रकार गंदोधक बनता है कि यहां के सब प्राणी इसे लेकर भी वह एक महान समुद्र के समान दिखाई देता है, और यही एक प्रकार की वहां रचना होती है । जिसे वहां पर तीर्थंकरों का कल्याणक कहा जाता है वायु सुगंध युक्त तथा कामना रहित होती है ।

***मृदुकांक्षी के उपदेश तथा सम्बोधना

अब तुम सोचो समझो कि तुम्हारी क्या अवस्था है अब संसार भ्रमणा से मन उलझना "मेरा मोह था वह भी छूट गया प्रेम तथा बच्चों का तुम्हें अधिक मोह या चिन्ता नहीं है केवल तुम अपने साथ क्या रखते हो एक प्रकार की भ्रमणा और लोभ अगर यह दोनों का त्याग दो फिर तुम को और क्या चाहिए" स्वयं इन्द्र भी तुम्हारी अवस्था से साधा युक्त होगा।

इस संसार में वैराग्य क्या है यह जानना कठिन है संसार में मोह ममता त्यागना एक साधारण वस्तु नहीं है । मृग तृष्णा को तुम त्याग दो और अपने

***इसी भव की दिवगत पत्नी

धर्म का वैभव क्या है इसे देखो सोचो विचारो यही अब तुम्हारा जीवन का अन्तिम रूप या स्वरूप है

मृदुकाक्षी
१४-५-१९८०

ओं नमो श्री केवलीभ्यो नमो नम:

आज आपका समाचार मिला मैं तुम्हारा मंगल चाहती हूं मंगल मय स्थिति हो मंगल मय ज्ञान है मंगल मय ही सब कार्य हों तुम अपनी अवस्था को समझो। ज्ञान का उपार्जन करो। ज्ञान जीव का लक्षण है। ज्ञान की ज्योति जब प्रकट होती है तो जीव का स्वरूप क्या होता है विद्युत जीव की अवस्था चैतन्य युक्त होने पर भी वह एक प्रकार की विद्युत शक्ति होती है। ज्ञान का उपार्जन करो। संसार में मोह का नाश हो और सब प्रकार की इच्छाएं समाप्त हों यही अवस्था है कि जब यह प्राणी अपनी अवस्था को प्राप्त होता है जिसे सन्त पुरुष कहते है

"साधु वृत्ति"

तुम जैन धर्म का विशेष ज्ञान जीव का लक्षण क्या है समझो। संसार को जीव का लक्षण बताओ यह अवस्था मेरु मंत्र मे ही प्राप्त होती है जैन धर्म का ज्ञान उपार्जन करने मे जीव की शक्ति प्रकट हो कर सब प्रकार का मिथ्यात्व नाश करती है मेरु मंत्र क्या है यह तुम्हे बताया है

मृदुकाक्षी
३०-७-१९८०

श्रो नमो सर्व केवलीभ्यो नमो नम:

आज तुम फिर उदास हो कारण ये नही है तुम क्यो विचारते हो जीव की संज्ञा क्या है इस को विचारो क्या तुम मेरा वह शरीर चाहते हो तो क्यों स्वयं दाह कराया और उस को सुरक्षित रखा होता अगर शरीर की इच्छा नहीं है और तुम चाहते थे कि जीव ही साथा रहे तो जीव को स्वयं ही रखने का प्रयास करते उसे जाने दिया क्या क्यों तुम्हारे जीव का मेरे इस शरीर मे

जो जीव था कुछ सम्बन्ध था बताओ ? अगर सम्बन्ध था तो क्या सम्बन्ध था अगर सम्बन्ध नहीं था तो फिर किस कारण से तुम उस जीव का स्मरण करते हो ।

सम्बन्ध अगर था तो, उस जीव के साथ जो कार्माण शरीर था और तुम्हारे कार्माण शरीर में जो कर्म प्रमाणु है इन का अपना आकर्षन विकर्षन ही था, और उसे संसारी प्राणी "मोह" कहते हैं ।

अगर इस मोह का नाश हो जाये तो किसी प्राणी का किसी प्राणी से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है; यही विचारो । समयक्त, ज्ञान का उपार्जन करो यही संसार से पार करने वाला है

मिश्रमोहनी कर्म को पूर्ण त्याग करो और तुम्हारी अवस्था उसी मिश्रमोहनी कर्म में चल रही है इसे त्यागने का प्रबन्ध करो । यह संसार म भ्रमाने वाली अवस्था है

चिन्ता मणि रत्न पास होते हुए उसे मिट्टी आदि पदार्थों में मिला कर रखते हो । तुम समयक्त ज्ञान युक्त होने पर पुन: मोह का विचारते हो । क्या पुन: इस शरीर को धारण करने की इच्छा है ? इसे त्यागो समयक्त प्राप्त करो और मोहनी कर्म को नष्ट करो

समयक्त, रत्न ही संसार का ज्ञान है

मुमुकांक्षी

जिन शासन देव का उपदेश

ध्यान की अवस्था लाओ संसार का कार्य कब तक ? —
अब तुम शीघ्र ही अपने ध्यान की अवस्था लाओ ?

स्वामि समन्त भद्र आचार्य का उपदेश

महाविदेह से स्वामि समन्त भद्र आचार्य कहते है हम ने समझाया परन्तु यह नहीं समझ रहा है । इसे संसार का मोह अति है, मोह बन्धन त्यागना कठिन है । अब संसार का बन्धन त्याग कर अपना कल्याण करने का उपाय करो

मंत्र और मुमंत्र मंत्र तुम को दिया है । ध्यान पूर्वक करो संसार से पार होंगे

२३-८-१९८०

उपदेश-सम्बोधना

ओं नमो सर्व केवलीभ्यो नमो नमः

मैं श्री चक्र रत्न को धारण करने वाले देव लोक के वासी श्री निर्ग्रंथ मुनि श्री सुभद्राचार्य को नमस्कार करके कहता हूं कि संसार का विचार करो और अपनी आयु का विचार करो स्वयं तुम को हम सम्बोधने के वास्ते आते हैं और सब ज्ञान उपदेश तुम को देते हैं अतः तुम अपना ध्यान ज्ञान क्या है समझो और अपने जीवन को व्यर्थ न गमाओ ॥

संसार क्या है जानो मिथ्यादृष्टि ही इस में रत रहते हैं और सम्यक्त युक्त जीव (प्राणी) इस को एक प्रकार का प्रलोभन समझ कर त्याग देते हैं

शुभ चिन्तक भवदेव

२७-८-१९८०

सम्यक्त : सम्यक्त रत्न क्या है। जीव का वास्तविक ज्ञान ही सम्यक्त है जब तक वास्तविक ज्ञान नहीं होगा। उस समय तक चारित्र का होना सम्भव नहीं है। अतः सम्यक्त रत्न को प्राप्त करके उसी के अनुसार अपना आचरण करना ही सम्यक्त चारित्र है

निश्चय नय और शुद्ध नय से विचार करने पर जब यह प्राणी जीव के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करता है और शरीर को एक प्रकार का आवरण समझ कर मोह ममता का त्याग कर अपने गुण स्वभाव में ही रमण करता है वही प्राणी सम्यक्त युक्त होते हैं। अगर इसके विपरीत जीव के शुद्ध ज्ञान को न जानते हुए अपने आप को सम्यक्त रत्न धारी कहने वाले अपने आप में ही कपट रूप व्यवहार करते हैं अतः सम्यक्त प्राप्ती हेतु निज गुण स्वभाव को जानकर आचरण करो।

आत्मा का शरीर त्याग (मृत्यु) विभिन्न प्रसंगों से

जीव और आत्मा का स्वरूप क्या है ? जब आत्मा का नाम लेते हैं तो शरीर में जो चलता फिरता है और ज्ञान युक्त है वही जीवित कहा जाता है उसी में आत्मा या जीव कहा जाता है "परन्तु मृत्यु किसे कहते हैं और कब और क्यों आती है "क्या दुख या सुख का अनुभव होता है।

अपनी आयु कर्म को जब यह जीव पूरे करने के समीप होता है तो विधि के विधान, या समय के अनुकूल या दूसरे शब्दों में चाहे कुछ कहो इस आत्मा के साथ जो कार्मान शरीर है उसमें जो कर्म प्रमाणु बाहर की तरफ होते हैं वह मन्द कषाय, अथवा तीव्र मध्यम होते हैं और उसी अवस्था में जो शरीर की त्वचा है उसमें, और आत्मा के कार्मान शरीर में, जो सम्बन्ध है उस पर उन कर्मों का अति कठोर प्रभाव होता है। उस समय जो आत्मा में बाहर की ओर कठिन कर्म प्रमाण निकलते होते हैं उनमें एक प्रकार की तन्द्रारूपी मोह की दशा प्रकट होती है। और यह अवस्था अति कठिन होती है यही अवस्था उस जीव के शरीर को अचेत अवस्था में करती है। उसी समय जो उपद्रव उस समय आत्मा के कार्मान शरीर के हिलने चलने अथवा आयु कर्म की तपस्या में पैदा हुआ है उसमें एक प्रकार की गर्म और तीक्ष्णता पैदा होती है। जिससे कार्मान शरीर के चारों ओर उष्णता पैदा होती है और शरीर के परमाणुओं द्वारा वह बाहर निकलती है। यह अवस्था बुखार की है। जितनी अधिक मात्रा में सघर्ष होगा अत: उतना ही ताप अधिक होगा।

उसी समय अगर कार्मान शरीर में वेदनीय कर्म के प्रमाणु अधिक मात्रा में अपने स्थान से बाहर हट तो उसी के अनुसार अलग अलग रोग उस दशा में उत्पन्न होते हैं। जैसे नाभि में अगर मध्य में कोई प्रमाण हो तो दस्त का विकार पेट शूल आदि, नाभि से हृदय तक नमोनिया आदि। हृदय से मस्तिष्क तक अनेक रोग जिसमें गला आख मुंह नाक में कष्ट पावे। अगर सिर में अधिक पीड़ा हो तो चाहिए की मरने वाले पुरुष को कुछ ध्यान का स्वरूप बतावें परन्तु ध्यान नहीं लगे।

यह देखा गया है कि मरते समय अधिकतर सिर पीड़ा बहुत कम मनुष्य में होती है, क्योंकि सिर की पीड़ा के परमाणु शरीर में हृदय और मस्तक के साथ ही होते हैं। परन्तु अधिकतर वह मनुष्य जो मृत्यु के समय उन परमाणु से मृत्यु को प्राप्त होते या तो वह तपस्वी होते है या श्रावक जो गृहस्थ में भी, मुनि के समान धर्म ध्यान, अथवा तीव्र कापोत लेश्या में शुद्ध आत्मा हो अन्यथा अधिकतर सिर पीड़ा मृत्यु के समय नहीं होती।

अगर उसकी टांगों में कष्ट हो तो चाहिए कि उस पुरुष के रक्षक उसे दही में थोड़ा सा घी पिला दें, परन्तु उस अवस्था में जब यह निश्चय हो कि मृत्यु जरूर होगी। उससे उदर में जा कर एक प्रकार की वायु का उपद्रव होने से वह आयु कर्म प्रमाणु जो कार्माण शरीर से अलग होने पर थे एक प्रकार से उस जीव के शरीर से अलग हो जावें और उसका प्राण शीघ्र शान्त हो।

जब आत्मा के इस शरीर को छोड़ने में ८ घड़ी शेष रहती हों तो यह आत्मा और कार्माण शरीर का एक प्रकार का शुद्ध भाव होता है और वह कर्म जो आत्मा के अन्त में सचालक होते है, वह पृथक होकर (द्रव्य-आकर्षण-शक्ति द्वारा) आत्मा और कार्मान शरीर के उग्र भाग में आ जाते है। और उसी के अनुसार उस जीव के भाव होने प्रारम्भ होते हैं। और चार घड़ी बीतने पर उन कर्मों का उदयमान पूरे रूप से होता है। कहा है अन्त मता सो मता

तत्क्षण, यह आत्मा जीव प्रदेशों को अपनी ओर एक प्रकार से खींचना शुरू करता है और यह अवस्था [दम-कशी-अन्तिम अवस्था] इस शरीर की होती है।

अगर यह जीव मर कर उर्द्ध लोक में जाता है, तो जीव के प्रदेश, आत्मा के हृदय की ओर चलते है, और नाभि से हृदय तक गमन करते हैं। तो उस समय मध्यम् प्रकार की अवस्था होती है।

अगर मोक्ष को छोड़कर ५ वें स्वर्ग से ऊपर गमन करना हो, हृदय और मस्तक तक यह गमन करते है। अगर मोक्ष में जाना हो तो जहां पर यह जीव प्रदेश होते है वहां ही ठहरे रहते है, परन्तु घातिया और अघातिया कर्म के क्षय होने से यह शरीर के प्रमाणु सब अलग अलग होकर बिखर जाते है। कार्माण शरीर पहिले ही नष्ट हो गया शुद्ध आत्मा, जीव रहने से धर्म द्रव्य के योग से उर्ध्वगमन स्वभाव से मोक्ष शिला तक गमन करता है।

अन्य सब दिशाओं मे नर्क: तिर्यंच १:२.३: इन्द्री जीव तक जन्म धारने तक नाभि से नीचे पैर तक जीव प्रदेश गमन करते हैं। परन्तु ५ इन्द्री मन वाली-या अन्य जीव ४ इन्द्रिय जीव यह नाभि और कटि तक ही आस्रव युक्त होते हैं।

अगर भवन वासी-व्यंतर-भूत-वैताल आदि का जन्म लेना हो तो उसकी जाति के अनुसार अपने उस शरीर को धारण के योग्य-दाये-बायें भाग की ओर उर्द्धव-और अधो का विचार करते हुए जीव प्रदेश गमन करते है।

अगर भोग भूमि-या अन्य विमान में जन्म धारण करना हो कन्धो के समीप जीव प्रदेश आते है। यदि (वैकुंठ) अथवा योग शिला जिसे हम १६ विदेह क्षेत्र कहते, है वहां जन्म धारण करना हो हृदय के समीप प्रदेश आते है। और इनके अन्यथा दूसरी गति का विचार स्वयम् जानना चाहिए

नर्क को जाने वाले आत्म प्रदेश शरीर मे छोटे से छोटे अवगाहना रूप में गमन करते है परन्तु नर्क की पृथ्वी का अनुभव करके, जीव प्रदेश अपनी अवगाहना को बढाते है और वहा के नारकी के समान प्राप्त होते है। भूत प्रेत आदि । इन सब का वृतान्त इस प्रकार जानो जैसे जैसे ऊपर जाओ वैसे वैसे आत्मा के जीव प्रदेश अपनी अवगाहना मे शरीर को त्यागे"

विदेहक्षेत्र "भोगभूमि-स्वर्ग" विमान वासी देव-नारायण-भामण्डल देव आदि अपने शरीर की १,३ से ८ ३ तक की अवगाहना तक गमन करे अथवा कहीं कहीं १/२ तक गमन है अथवा १ ८ से ७,८ तक गये, से विमान वासी स्वर्ग जो है उनकी अवगाहना है।

जैसी जैसी जिस की अवगाहना है उसी प्रकार उस को मृत्यु के समीप कष्ट या अन्य प्रकार का अनुभव होता है।

यदि जाप के समय शरीर का त्याग हो तो अगर मृत्यु काल में......कष्ट न्यूनतम् हो फिर भी आयु कर्म के अनुसार जन्म धारण करें। यदि उसने नीच गति का बन्ध किया हो तो उस समय के भाव से जो जाप अवस्था मे था वहां पर सुख का धारक जीव होता है, परन्तु अन्त: महूर्त मे वही भाव होंगे जो मृत्यु मे होने चाहिएं ।। जैसे घोडा होने पर उच्च नसल का कुल का आदि आदि

वैराग्य का स्वरूप कैसे होता है

(यहां जीव शब्द का प्रयोग किया गया है कारण यह चैत्यनय है)

जब यह जीव, अपने कर्मों में बहुत समय तक घिरा होता है, तो उसे किसी तरफ भी निकलने का संयोग नहीं होता परन्तु जब जीव किसी कारण वश कुछ समय तक ध्यान का रूप धारण करता है तो उस समय कुछ कर्म परमाणु अपने स्थान से विच्छिन्न होते हैं और उसी समय यह जीव अपने स्थान पर होते हुए भी एक प्रकार का कम्पन्न अनुभव करता है, उस समय अगर इस जीव के उस तप के योग से या अन्य किसी प्रकार के बाह्य कारण के मिलने से आत्म प्रदेश में यह भाव उत्पन्न हो जावे कि संसार मेरे बन्धन का कारण है और यही मुझे चारों ओर से जकड़े हुए है तो आत्मा में एक विशेष प्रकार की चिंतन की अवस्था हो जाती है। और अगर यह चिन्तवन आत्मा में अपने निज स्वभाव का शुरू हो जावे तो कुछ समय में उसकी यह अवस्था होती है कि वह बाह्य पदार्थ जो भी इसको मिलते हैं उनमें एक प्रकार का आकर्षण न करते हुए विचारता है कि इस वस्तु से मेरा क्या प्रयोजन मेरा स्वभाव वस्तु स्वरूप का जानना विचारना देखना है, कौनसी वस्तु मुझे सहायक है, इस प्रकार वह विचार करता है यही अवस्था उस जीव के मोह कर्म में स्थिलता आने की है

अगर शुभ योग से उस समय गुरु द्वारा, देव द्वारा, या अन्य शास्त्र की स्वाध्याय द्वारा संसार का अन्तिम स्वरूप दिखाया जावे तो उस पुरुष का भाव ऐसा होता है कि कोई वस्तु स्वरूप, उसको जीवन में उपयोगी दृष्टि से नहीं आती, और न उसकी इच्छा किसी वस्तु समान द्रव्य की इच्छा ही जाग्रित होती है। परन्तु अगर उसके कार्मान शरीर में ज्योति का अंकुर प्रकाशमान न हो तो यह स्थायी न हो कर क्षण भगुर होगा और वह उपदेश या साधन के दूर होते ही प्राणी पुनः अपनी संसारी विषय वासना में युक्त हो जावेगा और धर्म द्रव्य जो उस समय आत्म प्रदेश के समीप थे, वह उन कार्मान शरीर से अपना स्वरूप देखते हुए भी एक प्रकार निश्चेष्ट होकर स्थिर होगा, उस अवस्था में ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि उस प्राणी को व्रत उपवास आदि का क्रम शुरू करा देवे ताकि काय के शिथल होने पर मन की गति मन्द होने से उन अशुभ कर्मों की शीघ्र ही निर्जरा हो, और वह कर्म जो शुभ योग सहित है और धर्म द्रव्य का योग प्राप्त है उनका पुनः उदय हो, तो उसको पुनः धर्म में आरूढ़ करने के हेतु धर्म ध्यान आदि कराना चाहिए।

बिलकुल नष्ट करते हैं और स्वर्ण के समान जो सूर्य का प्रकाश है उसके समान आत्मा के तेज, तेजस शरीर से प्रगट होता है। यही अवस्था १३ गुण स्थान की है यहां से जीव धर्म ध्यान का योग धारण करके ऊपर से ऊपर चलता है परन्तु सूर्य के योग से अपनी आत्मा में लीन होने वाले पुरुष मोक्ष को प्राप्त करते हैं और जो पुरुष संसार का किसी प्रकार भी चिन्तवन करते हैं वह संसार के सुख प्राप्त करने के कारण स्वर्ग से होकर पृथ्वी पर चक्रवर्ती राजा-सेठ या और कोई विशेष जाति के देव के समान आयु व्यतीत करते हैं

अगर १३ गुण स्थान पर शुकल ध्यान को धारण न करे तो संसार में भ्रमण ही होगा यह जानो विचार करो

अब वैरागय के प्राप्त करने के चार पांच योग देते हैं

१. श्री अरिहंत भगवान केवली के समान अपनी आत्मा को निर्मल जानकर पंच प्रकार का योग धारण करना और जाप-ध्यान आदि महा कठोर रूप में उग्र तप करना यह तपनामा, अंग है इससे कर्म क्षीण होकर स्वयं ही संसार से वैरागय उत्पन्न होता है

2. मुनि के समीप रहने से मद उपदेश सुनने से यह दूसरे दरजे का वैराग्य है इसको पुन: तपनामा अंग धारण करना होगा

३. स्वाध्याय, यह भी संसार से वैराग्य का कारण है इसको पुनः उपदेश और तप मुख्य कारण होगा

४. देव कृत रूप से वैरागय। यह तीर्थंकर गोत्र वाले महा मुनि पद को प्राप्त करने वाले और पंचम काल में सिरफ चक्र रत्न की स्थापना करने वाले पुरुष को ही अधिकतर प्राप्त होते हैं अन्यथा देवगण अपने योग मे शिक्षा पर भी आते हैं

५. जब मोहनीय कर्म शान्त हो तो भी वैरागय होता है परन्तु यह बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। अधिकतर यह ऊपर के चार ही कारण होते हैं

रत्न माली यक्ष

सुनाऊं धर्म का रूपक तो बेड़ा पार हो जावे
यही इच्छा है अब मेरी कि दर्शन अब दिखाऊं मैं
करूं अब तुम को भव गामि नहीं अब देर करनी है
कि माया और ममता का तुम्हारा नाश करना है
अगर तुम को विषय का योग और दूं मैं
तो तप और जाप का संयम से तुम को दूर करना है
यही अब एक इच्छा है कि जाऊं दूर अब मोह से
करूं उपकार अब तेरा कि बेड़ा पार हो तेरा

ओम नमो सर्व केवली भ्यो नमो नमः

आत्म दर्शन

किस प्रकार होता है ?

१. आत्मा क्या वस्तु है यह भिन्न भिन्न दर्शन वाले भिन्न भिन्न स्वरूप को बतलाते है कोई कहता है कि यह अग्नि का एक पुञ्ज है कोई कहता है कि यह एक स्थूल रूप में वायु-अग्नि आदि पंच तत्व का मिश्रन है कोई कहता है कि यह वायु का एक योग है और कोई कहता है कि माता पिता से उत्पन्न हुए शरीर में जो कार्य युक्त द्रव्य हैं उनके सचालन से जो शक्ति पैदा होती है उसे ही आत्मा कहते है और इसी प्रकार भिन्न भिन्न मत मतान्तर के पुरुष आत्मा का अन्त भी भिन्न २ स्वरूप से बतलाते हैं परन्तु जैन दर्शन क्या कहता है वह क्या आत्मा का स्वरूप बतलाता है वह क्या वस्तु है यह अब विचारना है

२. संसार में यह भी कोई सत्यता से नहीं कह सकता कि पृथ्वी, यह वायु अग्नि आदि वस्तुऐं तथा पुरुष-स्त्री आदि कब आए और संसार का कब निर्माण हुआ और किसने इसको बनाया। इसका विषय भी गहन हैं, और मत मतान्तर वाले अनेक रूप में विवाद करते हैं ।। अस्तु जैन धर्म क्या कहता है ।

१. आत्मा को कुछ दर्शन अनादि मानते हैं परन्तु जैन दर्शन स्याद वाद से अथवा ज्ञान-तत्व आदि वस्तु को परखने के कारण अनेक वस्तुओं से मिलान करता है। और हर एक अवस्था से उसकी जांच पड़ताल करता है और यही लक्षण स्याद वाद का है। स्यादवाद कुछ नहीं एक ऐसी कसौटी है जिससे तत्व

ज्ञान की परख हो और वास्तव में सत्य क्या है यही ज्ञान को जानने के कारण तत्व ज्ञानी मुनियों ने इसको प्रचिलित किया है

अब यहां पर हमको आत्मा का विचार करना है

हमको यहां यह कहना पड़ेगा कि जैन शास्त्रों में आत्मा का महान रूप में वर्णन है परन्तु वह क्या है यह देखना है और उसको ज्ञानी पुरुषों ने किस प्रकार अपनी बुद्धि बल से विचार किया है यह अवस्था अब विचारनी है

सबसे पाहिल श्री आदिनाथ भगवान को जब केवल ज्ञान हुवा तो उनको गणधर प्रशन्न करते भये कि हे प्रभु हमारी आत्मा और आपकी आत्मा एक समान है दोनों केवल ज्ञान युक्त है परन्तु आप तीर्थंकर के गोत्रधारी है और काल के प्रवर्तक है इस कारण व्यवहार नय से आपको हम प्रणाम करते हैं परन्तु वास्तव में निश्चय नय से या शुद्ध नय से हमारे और आप में भेद न होने से नमस्कार का निमित्त ही उन्पन्न नहीं होता। नमस्कार आदि जब ही उपयोग में आते हैं जब न्यून या अधिक का प्रमाण हो अथवा इच्छा या अन्य प्रकार के भाव हों हम तो सब सर्व इच्छा रहित हैं "ज्ञान है निर्मल और जानते हैं सब चराचर को परन्तु मुख्य धर्म कर्त्ता हैं तीर्थंकर। अस्तु हे नाथ आप अपनी दिव्य ध्वणी से संसार का अज्ञान तिमर नाश करने हेतु अपनी उपदेश रूपी दिव्यध्वनि करें ताकि यह जीव समूह अपनी कर्म की गति का विचार करके अपने कर्म फल को जानकर संसार में योग्य और अयोग्य कार्य्यं का विचार कर सकें और पुनः जैन धर्म का प्रवचन ही प्रवचन संसार में हो ऐसे वचन सुन कर गणधर को स्वामी कहते भये कि हे गणधर सुन आत्मा = आः तः म

सबसे पूर्व संसार का रूपवर्णन करता हूं

अब आत्मा का स्वरूप ही संसार में मोह को नाश करने का हेतु होगा अस्तु आत्मा का स्वरूप सुनों

अनादि कहते है कि जिसकी गणना न हो सके और जिसका आदि का स्वरूप न जाना जा सके परन्तु यह उपयोग किस के हेतु है यह है उन जीवों के हेतु जिसके है कर्म का आश्रव परन्तु केवल ज्ञान युक्त जीव के निमिति अनादि का समय कोई नहीं है वह देखते सब काल

जब संसार में ज्ञान की ज्योति मन्द होती है तो संसार में क्या होता है ? काल का निरूपण—आरे का स्वरूप:—अवधि और काल परिवर्तन का योग परन्तु जब एक काल उत्सर्पणी—अवसरपणी का पूर्ण रूप से परिवर्तन होता है तो यह संसार एक प्रकार के ऐसे द्रव्यों में परिवर्तन होता है कि जिसको हम अपने शब्द में द्रव्य कहते है और वह हैं :

आकाश-काल-जीव-अजीव (पुद्गल) धर्म-अधर्म ।। शरीर जो मनुष्य के हैं चाहे पशु पक्षी के हैं चाहे तिर्यंच के हैं चाहे त्रस स्थावर वनस्पति हैं वह एक प्रकार से सब अपनी अपनी स्थूल काया को त्याग कर इन छः द्रव्यों में विभिक्त हो जाते हैं उस समय अवस्था क्या होती है

शुद्ध जीव संसार में नहीं होता क्योंकि वह काल परिवर्तन से पूर्व ही अपने उर्द्धव गमन स्वभाव से और कर्म रूप मल से रहित होने के कारण उर्द्धव गमन करके संसार की मर्य्यादा को पार करके ऐसे स्थान पर पहुंचा है कि जहां अधर्म द्रव्य न होने से आवागमन नहीं हो सकता और हम कहते है "मोक्ष में"

अब रहती है दूसरी प्रयायें उनमें कर्म पुदगल परमाणु अधिक है और जीव प्रदेश भी अनन्तान्त है कर्म परमाणु भी अनन्तान्त है जीव प्रदेश में कर्म वर्गना होने से जीव प्रदेश का अवगाहना गुण होने से और कर्म द्रव्य के साथ युक्त होने की आकर्षन शक्ति होने से एक प्रकार का भूकम्प के समान संसार में उपद्रव होता है और कर्म प्रमाणु अति वेग से इस वायु मण्डल में अथवा आकाश में अथवा सर्व ओर धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य की शक्ति-प्रशक्ति के संचालन के योग से वह चारों ओर फैलते हैं और उसी समय वह जीव प्रदेश भी धर्म-अधर्म द्रव्य के योग से चारों ओर चलते हैं उस समय अवस्था होती है

(जीव प्रदेश+कर्म पुदगल परमाणु)=संसारी जीव+(धर्म-अधर्म द्रव्य के कर्म परमाणु=एक नवीन वस्तु एक मिश्रन जैसे चीनी में जल का मिश्रन "इसे कहते हैं ज्ञानी जन आत्मा"

यह योग धारण करती है अनेक प्रकार की

१. शून्य शून्य	२. शून्य
३. शून्य सामान्य	४. सामान्य

इस प्रकार यह अनेक भेद युक्त होती है

यह भेद किस प्रकार हैं जिस समय आकर्षन विकर्षन होता है तो उस समय जिन प्रमाणुओं का अति घोर रूप से मिश्रन होता है वह अति कठोर होते हैं जैसे पत्थर आदि इसी प्रकार पृथ्वी-वायु-अग्नि-जल-पशु-पक्षी आदि सब भिन्न प्रकार के रूप और लक्षण धारते हैं और उस समय मनुष्य और देव गति वाले जीव भी मिश्रन में आते हैं यही अवस्था दूसरे रूप में संसारी व्यवहार में संसार का आदि काल होता है परन्तु स्याद-वाद के रूप से वह परमाणु-जीव प्रदेश के रूप से वह अनादि है और जीवों के इन नये रूप के योग से वह आदि है

परन्तु केवल ज्ञान धारी जीव उस समय को और इससे पहिले समय को सबको जानते है अस्तु वह कहते हैं कि जीव प्रदेश के योग से आत्मा आदि है क्योंकि जीव प्रदेश पहिले विद्यमान थे और कर्म परमाणु पहिले भी विद्यमान थे अस्तु जब वह संबंध युक्त होकर एक भये वह समय उस वस्तु के निर्माण का हुआ अथवा आत्मा की उत्पति का हुआ। अस्तु वह समय आदि काल भया परन्तु जीव प्रदेश और कर्म परमाणु अनादि काल से आ रहे हैं और आत्मा उनका मिश्रन है उस अपेक्षा से वह अनादि है यह स्वरूप ही हमको देखना जानना और समझना है

अस्तु यही आत्मा का स्वरूप है

अब सब सरल वस्तु शेष रहती है जीव प्रदेश जब शुद्ध अवस्था में हो चाहे एक कण हो चाहे अनेक का समूह हो वह शुद्ध निर्मल सर्व ज्ञान युक्त होता है और उर्ध्व गमन स्वभाव से युक्त होने से वह इस संसार में नहीं तिष्ठता और उसी समय अपनी अन्तिम स्थान को गमन करता है

उस अवस्था में जब तक इस संसारी जीव को वह शुद्ध अवस्था प्राप्त नहीं होती वह उस शुद्ध अवस्था वाले जीव प्रदेश अथवा केवल-ज्ञानी आत्मा को नहीं देख सकता इस कारण वह सब बाह्य स्थूल शरीर को देखते हैं परन्तु गणधर अथवा केवली अपने समान सब अन्य केवलियों तथा तीर्थंकर की आत्मा को देखते हैं और अपनी किसी इच्छा न होने से किस प्रकार का भ्रम या संशय या इच्छा नहीं होती और सब जीव अपने गुण स्वभाव में लीन होते हैं परन्तु आयु कर्म शेष होने से कुछ समय इस जगह पर व्यवहार रूप में ठहरते हैं और

स्थिति क्या होती है उसकी शरीर के अन्दर एक ऐसा रूप पैदा होता है कि वह बाह्य दृष्टि में नहीं रहता और आत्म प्रदेश ही दूसरे को देख सकते हैं अथवा यही अवस्था विचार युक्त थी अब यही सबको अपना रूप का योग धारण करने के हेतु ज्ञान ध्यान का योग लेना चाहिए और इस आत्मा का कल्याण का उपाय करना चाहिए

इसी रूप से यह अन्त और आदि का कारण बनते रहते हैं यही जैन दर्शन कहता है यही गौतम् गणधर का उपदेश था यही श्री आदिनाथ भगवान ने उपदेश दिया था

Not available in any other part of the world
or International market

JAMESTHY JUVENESCENT MANI

very Rare & Unique Precious Stone
Helps in curing heart and nervous patents

JAMESTHY JUVENESCEFT MANI is a unique, life force Rejuvenation stone known as "Jamethy Juvenescent Precious estone" because it has the capacity to absorb the **ULTRA VOILET** Rays from the planets.

It is this quality, which makes it behave like the negative pole, of the magnet. As a negative pole it draws vitality, from the celestial store house of the required vitality, It is that source, which acts as the positive pole and the magnetic field gets created. From the negative pole of the magnetic field, which is the stone itself, the positive polarity of the human being, draws the life force more and more and thus the magnetic field for rejuvenation of vitalities is created. This characteristic invests this stone with the unique quality of drawing the rays (Ultra Violet Rays) and enriching, the depleted physique of the person who wears the stone. Whosoever needs physical vitalisation for the renovation of the entire nervous system, will find it of great tonic and of rejuvenative value the specific gravity of this stone, matches the specific gravity of three precious stones i.e jade. Amethyst and Aquamarine rolled into one. This not does amply the total quantum is in confirmity to the specific gravity of this stone Arithmatically. It really means, that the stone has the vitalities of drawing the Ultra Violet Rays increased in a geometric progression in terms of its

efficiencyas a precious stone. Jade has the quality of drawing thevitality for the depleted energy of the heart' and Amethyst draws extra energy for the brain, and Aquamarine revitalises the power of developement.

Jamesthy (Jeewan Kalpa Mani) combines the quality of all & creates qualitatively a vitality which rejuvenates in total the entire human physique. Thus viewed this stone offers to the wearer the triple qualities of three stones in one. The effects of wearing this stone can be felt within ten minutes of putting it on the outstretched palm of the wearer's hand. Distinct vibrations will be sensed through a sensation travelling up the arm. Two types of sensations will normally be felt by different personalities. Some will get cold sensation and the others, a sensation of heat when putting the stone on the finger tips. This depends on whether the person needs more of physical vitality or mental at the moment of touching this unique stone.

It is this marvel of Receptibility and the unmatched quality of rejuvenative force that really makes this stone the unique object among precious stones, yet another quality which it has, is its total effect on the sex aspect of the wearer.

Among men and women, equations of mal-adjustment mar the joy of living. The qualities of this stone as the magnet for vitalities invest the wearer with the filling up of any depletions in the sex aspect of their lives. In sex life it is a common phenomenon that even couples who start life well matched for mutual satisfaction, later develope a hiatus in the capacity to satisfy each other.

It is this fact which normally accounts for a great number of divorces around the age of 35-40 years. This maladjustment, which is so ruinous gets totally back to the finest equation of sex satisfaction by wearing "JAMESTHY PRECIOUS STONE". This fact can be tested within 14 days of wearing this unique potent stone, any where on the body, touching any part of the skin.

Finally, this precious stone has the quality of off-setting the evil effects of Alcohalism. All the deficiencies to which the system becomes an object get renovated and the wearer does not get the un-controllable craving for drinking.

In case of all those who desire to control the craving when they really and truly do not want to indulge in drinking the wearing of this stone works wonders in such cases, it should be worn touching the skin on any part of the left arm, exposed or un-exposed. But generally it is worn in bands, touching the skin directly. But it is not to be worn on the finger, if the object of wearing is only to control the craving for drink.

WHAT PEOPLE SAY

about

JAMESTHY JUVENESCENT MANI

A UNIQUE PRECIOUS STONE

WITH VITALITY FOR REJUVENATION

The stone on the first occcasion when placed on the right palm reflected blue colour only. On the second occasion, it gave out blue colour followed by pink towards redness, and lastly milky white. There was also a sensation as is of up braiding the feelings.

Sd. : Inder Sahai
Deputy Secretary
Department of Rehabilitation
Govt. of India, New Delhi.

15.2.1969

□

I am light with this stone. I feel soft vibrations that take away my senses. Swinging around, floating.

Sd : Suzzane Means,
341, Sunrist Lane, Los Alos
California, U.S.A. 94022

New Delhi
January, 1969

"Recorded in my presence". BABA, Master of the Occult circle of India, NEW DELHI.

□

Immediately after placing the stone on the palm I felt a strange sensation of cold vibrations going into my body. Afterwards I felt the sensation of an electric current mildly passing through the hand into the whole system.

Sd: Mrs. Manorma Dewan
Press Officer
Embassy of Iraq, 33, Golf Links,
NEW DELHI

5.1.1969

I got a feeling of swinging vibrations through a touch of cold numbness. The sensation became stronger and stronger after the contact.

Sd: D. Berinder Nath
Senior News Commentator
A.I.R., Parliament St.
NEW DELHI.

December, 1968

□

While holding pink I felt it heavy, while blue it was light. While white it was neither light nor white. It indicated

to me that I have strong feeling for doing work and while feeling blue it indicated nervousness and frustration. While feeling white I thought not to worry about anything.

Sd: S. C. Jain

15-2-1969 Post Master Parliament St.

H. O. NEW DELHI-1.

—:—

LEENI GEM

This is an extraterresterial stone. White in colour. transparent. It has the following properties:

If the life of the wearer is in danger, it would emmit white light. Helps in curing heart ptients. If certain rays are passed through the store, it would help in curing cancer patients. These properties can not be judged by any present scienlific insetrumnt, but can only be tested by an Occulist

Lord Mount Batten had acquired one Similar stone from India, and after acquiring the said stone he never met defeat on battle field in world war second. The stone emmited blue flam.

A similar stone, emmitting blue flame, was acquired by a member of BRITISH Royal Family, and by emmitting the blue flame, his life was saved in the year 1944, on the day when a gold and T.N.T. laden vessel burst into flames in Bombay, and he was driving on Bombay roads. Later he prnesented the said stone to her majesty Queen ELIZBETH on her marriage.

"VIDYUT" RATTAN Precious Stone

It cures Brain Tumour cases, by simply placing the stone on the effected area. Early stages cases can be cured in about

साईंस द्वारा भारत वर्ष की संसार प्रसिद्ध विज्ञान शाला के काफी जांच के बाद यह प्रमाण पत्र दिया है कि यह इस पृथ्वी का न होकर अन्य ग्रहों का है। अर्थात इसमें दूसरे नक्षत्रों के गुण भी है।

हृदय के रोगियों को इसे हृदय के पास धारण करना चाहिए। यह खून के प्रवाह को ठीक करके हृदय को विशेष रूप से बल देता है। कारण यह रत्न पृथ्वी और नक्षत्रों से हर समय एक प्रकार की किरण को ग्रहण करता है जो हृदय रोग निवारण के लिए अद्‌भुत प्रभाव रखती है।

यह ३ केरट से सात केरट तक का लोकट के समान जंजीर में हृदय वास्ते धारण किया जाता है और चिन्ता आदि और लक्ष्मी प्राप्ति के वास्ते अंगूठी में धारण किया जाता है।

इसका मूल्य ११००) प्रति केरट है विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

विनयचन्द जैन

४९७ कटरा रेवड़ी सब्जी मण्डी देहली-७